1

दर्शन का सामान्य परिचय

प्रस्तावना

मनुष्य एक बुद्धिमान प्राणी है - यह उसकी अन्य प्राणीयों से विशेषता है। उस विशेषता द्वारा मानव जो सर्वोच्च जीवन का लक्ष्य आविष्कृत करता है, वह 'दर्शन' शब्द द्वारा व्यपदिष्ट होता है। दर्शनों में ही वह सभी सुचीबद्ध होता है। दर्शन ही मनुष्यों की संस्कृति एवं सभ्यता के व्यवस्थापन का मूल है।

वह ही सर्वश्रेष्ठ संस्कृति जहाँ सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य सुलभ होता है। अत: दर्शन का मानव जीवन में अत्यधिक प्रभाव है।

'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' - यह गीता की उक्ति है। इहलोक में ज्ञान पवित्रता का जैसा कारण है, वैसा अन्य कोई भी नहीं है- ऐसा इस श्लोकांश का भाव है। ऐसी ज्ञान की महिमा है। और वह ज्ञान लौकिक एवं अलौकिक - दो प्रकार का है। लौकिक ज्ञान से जीवन का निर्वाह होता है। परन्तु मोक्ष सिद्ध नहीं होता। 'विद्ययाऽमृतमश्नुते' - यहाँ उक्त विद्या अलौकिक ज्ञान है। लौकिक ज्ञान को अपरा विद्या कहते हैं। मोक्ष की उपायभूता विद्या परा विद्या कहलाती है। 'अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते', ऐसा मुण्डकोपनिषद् (1-1-3) में उपदिष्ट है।

अत: 'दर्शन क्या है' - इस विषय का अवलम्ब्य करके यह पाठ विरचित है। दर्शनों में मतभेत अशान्ति और युद्धों के कारण होते हैं, ऐसे इतिहास और वर्तमानकाल में अनेक उदाहरण हैं। अत: दर्शन का अध्ययन अत्यन्त गरिमा को उत्पन्न करता है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- दर्शन शब्द के विविध अर्थों को जान पाने में;

टिप्पणी

- दर्शन की आवश्यकता को समझ पाने में;
- दर्शन की व्यापकता का बोध कर पाने में;
- दर्शन की प्रवृत्ति को जान पाने में;
- दर्शन का मूल निश्चित कर पाने में;
- दर्शन की विशेषता का बोध कर उसकी व्यावहारिकता को जान पाने में;
- दर्शनों में मतभेद का कारण जानकर समन्वय स्थापित कर पाने में।

1.1 दर्शन

दृशिर् प्रेक्षणे धातु में ल्युट् प्रत्यय के योग से दर्शन शब्द निष्पन्न होता है। कोष में –

दर्शनं दर्पणे धर्मोपलब्ध्योर्बुद्धिशास्त्रयोः।
स्वप्नलोचनयोश्चापि.....। (अनेकार्थसंग्रह, 410)

नयन, स्वप्न, बुद्धि, धर्म, उपलब्धि, शास्त्र, दर्पण – ये अर्थ कोशग्रन्थ में उक्त हैं। विभिन्न साहित्यशास्त्रों में इस प्रकार के अर्थों में दर्शन पद का प्रयोग सुलभता से मिलता है। एवम् दर्शन शब्द के नाना अर्थ होने पर भी भारतीय दर्शन, आस्तिक दर्शन इत्यादि स्थलों पर प्रयुक्त दर्शन शब्द के क्या अर्थ अभिप्रेत हैं, ऐसी जिज्ञासा उदित होती है। किसी पद के नाना अर्थों में कब कौन सा अर्थ ग्रहण करने योग्य है, पद किस अर्थ को बोधित करता है, पद के कितने अर्थ है आदि के निर्णय में प्रकरण आदि सहायता करते हैं, विशेष स्मृति कारण होती है। एवम् यहाँ पर भी दर्शन पद का क्या अर्थ व्याकरण के द्वारा सम्भव है, क्या अर्थ युक्त है इत्यादि प्रस्तुत किया गया है।

किसी भी धातु का अर्थ, फल और व्यापार होता है। दृषि धातु का अर्थ, ज्ञानरूप फल तथा तदनुकूल व्यापार जाना जाता है। अतः फल का व्यापार में अनुकूलत्व सम्बन्ध से अन्वय होता है।

दृशिर् धातु के अर्थ जानने में ही क्या फल और व्यापार हैं, इसका निश्चय करने में समर्थ है। दृशिर् प्रेक्षणे इति शिष्ठैः इस प्रकार शिष्ठों के द्वारा दृश् धातु का प्रेक्षण (देखना) अर्थ प्रदान किया गया है। तथापि धातुओं की बहवर्थता सुप्रसिद्ध है। अतः 'प्रेक्षण', इसका अर्थ यहाँ केवल चाक्षुषदर्शन नहीं अपितु ज्ञानसामान्य भी लिया गया है। पाँच अथवा छः इन्द्रियों द्वारा साक्षात् अथवा परम्परा से जो भी ज्ञानबोध बुद्धि, प्रमा और प्रमीति उत्पन्न होता है वह भी प्रेक्षण का एक पक्ष है।

दृशिर् धातु में कृत्यल्युटो बहुलम्, इस सूत्र से ल्युट् प्रत्यय बाहुल्य अर्थ में होता है,

जिससे दर्शन शब्द की व्युत्पत्ति होती है। उसके द्वारा दर्शन शब्द के विभिन्न अर्थ सम्भव होते हैं। वे ही व्युत्पत्तियाँ हैं-

1. 'दृश्यते यथार्थतया ज्ञायते पदार्थः अनेन अति करणव्युत्पनः दर्शनशब्दः। अर्थात् करण में ल्युट्। तब ज्ञानानुकूल व्यापार का करण दर्शन, यह अर्थ प्राप्त होता है। ज्ञानजनक व्यापार का करण **शास्त्र** है। ज्ञान के करण, जो सुप्रसिद्ध प्रमाण है, वे भी होते हैं। अतः दर्शन तो शास्त्र अथवा प्रमाण दोनों है। यहाँ दृश् धातु का अर्थ फल, ज्ञान तथा तदनुकूल व्यापार है। प्रत्यय का अर्थ करण होता है। अत एव फल के अनुकूल व्यापार का करण, यह अर्थ प्राप्त होता है। उससे ज्ञानानुकूल व्यापार के करण को दर्शन पदार्थ कहते हैं।

2. पश्यति अति कर्तृव्युत्पन्नः दर्शनशब्दः। अर्थात् कर्ता में ल्युट् अथवा ल्युः। तब ज्ञान के अनुकूल व्यापारवान् दर्शन, यह अर्थ प्राप्त होता है। ज्ञानजनक व्यापार का आश्रय तो ज्ञाता अर्थात् 'प्रमाता' होता है।

3. यत् दृश्यते तद् दर्शनम् इति कर्मव्युत्पन्नः (जो दिखाई देता है, वह दर्शन है) अर्थात् कर्म में ल्युट्। तब ज्ञानानुकूलव्यापारजन्यज्ञान का विषय दर्शन, यह अर्थ प्राप्त होता है। ज्ञान का विषय 'प्रमेय' होता है।

4. दृश्यते इति दर्शनम् इत्यत्र भावव्युत्पन्नः दर्शनशब्दः। अर्थात् भाव में ल्युट्। तब ज्ञानानुकूलव्यापारजन्यफल का ज्ञान, यह अर्थ प्राप्त होता है। यह ज्ञान ही **'प्रमा'** है।

इस प्रकार दर्शन शब्द की चार प्रकार की व्युत्पत्तियाँ सम्भव होती हैं। एवम् दर्शन शब्द के प्रमाण, प्रमाता, प्रमेय और प्रमा, ये चार अर्थ होते हैं।

'आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' इस श्रुति में 'द्रष्टव्य' - इस पद में 'दृश' धातु का अर्थ आत्मसाक्षात्कार है। अर्थात् प्रमा अर्थ में प्रयोग होता है।

जब भारतीय दर्शन, नास्तिक दर्शन, और आस्तिक दर्शन शब्दों का प्रयोग होता है, जब दर्शन पढ़ता हूँ, दर्शन पढ़ाता हूँ आदि कहा जाता है तब भी दर्शन शब्द का अर्थ प्रमाण अथवा शास्त्र ही होता है। अर्थात् सत्य के साक्षात्कार के लिए जो उपायभूत उपकरण रूप वह ही इसका अर्थ है।

सभी दर्शनों के अपने मतों के अनुकूल प्रमाण और प्रमेय होते हैं। प्रमाता प्रायः जीव ही होता है। कोई ईश्वर भी होता है। प्रमाणों के द्वारा प्रमाता की प्रमेय विषयिणी प्रमा उत्पन्न होती है, यह दर्शन का प्रधान कर्म है। तथा सत्य प्रमा अर्थात् निर्भ्रान्त ज्ञान के होने पर, उस दर्शन का प्रतिपाद्य विषय स्फुटित होता है।

भारतीय दर्शन के द्वारा भारतीयशास्त्र अर्थात् प्रमाण, प्रमेय, प्रमाता, प्रमा, ये सभी संग्रहीत होते हैं। कारण यह है कि ये सभी शास्त्रों में प्रतिपादित हैं। भारतीय दर्शन क्या हैं, इस पृष्ठ पर न केवल ग्रन्थ कहे जाते हैं। तथापि बहुलता से प्रधान रूप में विद्या

तथा गौण रूप में उसके प्रतिपादक ग्रन्थ, इस रूप में दर्शन शब्द प्रयुक्त है। वैसे ही-

''यदाभ्युदयिकं चैव नैश्रेयसिकमेव च।
सुखं साधयितुं मार्गं दर्शयेत् तद्धि दर्शनम्''॥ (भाट्ट संग्रह 1.21)

सरलार्थ - आभ्युदयिकं और नैश्रेयसिक, यह दो प्रकार के सुख हैं। उस सुख को साधने का मार्ग या उपाय जो दिखाता अथवा निर्दिष्ट करता है, वह दर्शन है। यहाँ इस श्लोक में दर्शन शब्द विद्या से भिन्न है।

शास्त्रम् - वैसे ही शास्त्र क्या है ? शासु अनुशिष्ठौ धातु के करण अर्थ में ष्ट्रन्-प्रत्यय से शास्त्रशब्द व्युत्पन्न होता है। शास्त्र के द्वारा अनुशासन किया जाता है। विधि और निषेध के भेद से अनुशासन दो प्रकार का होता है। वैसे ही अभियुक्त (विद्वान) ने कहा-

''प्रवृत्तिर्वा निवृत्तिर्वा नित्येन कृतकेन वा।
पुंसां येनोपदिश्येत तच्छास्त्रमभिधीयते॥''

जो पुरूष अर्थात् मर्त्य का नित्य अथवा इष्ट में प्रवृत्ति को उपदिष्ट करता है तथा अनित्य में निवृत्ति को उपदिष्ट करता है वह शास्त्र है।

पाठगत प्रश्न 1.1

1. दर्शनशब्द की व्युत्पत्ति लिखें?
2. भारतीयदर्शनानि, इस पद में दर्शन शब्द का क्या अर्थ है?
3. दर्शन पद के चार अर्थ कौन से है?
4. करण व्युत्पन्न दर्शन पद का क्या अर्थ है?

   (क) प्रमाण (ख) प्रमाता (ग) प्रमेय (घ) प्रमा
5. कर्तृव्युत्पन्न दर्शन का पद का क्या अर्थ है?

   (क) प्रमाण (ख) प्रमाता (ग) प्रमेय (घ) प्रमा
6. भावत्युत्पन्न दर्शन पर का क्या अर्थ है?

   (क) प्रमाण (ख) प्रमाता (ग) प्रमेय (घ) प्रमा
7. कर्मव्युत्पन्न दर्शन पद का क्या अर्थ है?

   (क) प्रमाण (ख) प्रमाता (ग) प्रमेय (घ) प्रमा
8. शास्त्र क्या हैं?

टिप्पणी

1.2 दर्शन की आवश्यकता

इस जगत में जीवों के दु:ख और मृत्यु, यह दो शाश्वत एवं अविशेष रूप से होते हैं। अत: दु:खनिवारण एवं मृत्युभय से रक्षा कौन नहीं चाहता है। प्राणी वर्ग सदा दु:खपरिहार एवं मृत्यु से रक्षा के लिए प्रयत्न मान परिलक्षित होते हैं। उन जीवों में मनुष्य ही चिन्तनशील है। पशुजीवन तो उद्देश्यहीन होता है। सहज प्रवृत्ति ही पशुओं की प्रेरक एवं प्रवर्तक होती है। कुछ पशु-पक्षी भी भविष्यकालीन प्रयोजन की सिद्धि के लिए गृहनिर्माण, सञ्चय आदि कार्य करते परिलक्षित होते हैं। तब भी सहज ही होते हैं। मनुष्य ही विशिष्ट बुद्धिमान है। यह ही उसकी प्राणियों से विशेषता है। मानव बुद्धि के प्रयोग से और युक्तियों की सहायता से ज्ञान अर्जित करता है। युक्ति की सहायता से तत्त्वज्ञान की प्राप्ति का प्रयत्न ही क्रम बद्ध रूप से आयोजित हो दर्शन रूप में परिणत होता है। बुद्धि और युक्ति से प्राप्त ज्ञान के द्वारा मानव जीवन शैली को निर्धारित करता है तथा आचरण करता है, जैसे - यहाँ तथा परत्र सुख रहना चाहिए। यह शैली ही धर्म है। तथाहि-

आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तैषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥
(हितोपदेशः)

भावार्थ - अन्नपानादि रूप आहार, निद्रा, भय और मैथुन, यह चार कार्य जैसे मनुष्यों में वैसे ही पशुओं में परिलक्षित होते हैं। इस दृष्टि से पशुओं से मानव की कोई भी पृथकता नहीं है। परन्तु मनुष्य का धर्म ही वह विशेष है जो पशुओं में नहीं है। यदि किसी मानव का धर्म न हो तो वह पशु के समान ही है। उसी प्रकार दर्शन की महिमा है कि उसके बिना मानव पशु के समान होता है।

यथा वैद्यकशास्त्र शरीर से उत्पन्न (देहज) दु:ख के अलगाव (पार्थक्य) के लिए औषधियों एवं उपायों का आविष्कार करता है। जैसे- जामिता के परिहार के लिए मनोरंजन करने में नाटक, काव्य, उपन्यास, उद्यान-क्रीड़ा आदि उपलब्ध होते हैं। यथा अन्न, पेय, वस्त्र आदि की अनिश्चितता को दूर करने एवं सुरक्षा के लिए लोग जीविकोपाय के चुनाव में गोरक्षा, वाणिज्य आदि करते हैं। यथा स्वजन, बान्धवों के भी जीविका व्यवस्था एवं दु:खनिवारण के लिए प्रयत्नशील लोग अल्प नहीं दिखते हैं। स्वयं के सम्मान लाभ और धर्मलाभ के लिए...। इसी प्रकार जगत प्रवृत्त होता है। इन सब में भी शास्त्रों का प्रयास, चौसठ कलाएँ हैं, उनके अनुकूल ज्ञान-दान हेतु विद्यापीठ और विद्यालय होते हैं। इन सब का जीवन में विशिष्ट स्थान है, यह किसके द्वारा नहीं जाना गया है।

यदि कल किसी प्रकार के दु:ख का अभाव हो अथवा किसी प्रकार का सुखाधिक्य हो, ऐसी चिन्ता लोगों को होती हैं, यदि आजीवन दु:ख से अलगाव के लिए एवं सुख के लिए भी लोग चिन्तित होते है, तो इस जन्म से आगे के जन्मों में क्या स्थिति होगी, उस स्थिति में भी सुख आदि के लाभ और दु:ख-उद्भव के निवारण के लिए

टिप्पणी

क्या प्रयास हैं, उसके लिए इस जन्म में क्या कर सकते हैं, जीवन का जन्ममृत्युचक्र, अथवा इस प्रकार अन्तकाल प्रवृत्त होगा, उसका कोई भी विराम है अथवा नहीं, ये सभी प्रश्न मनुष्यों के होते हैं। फिर भी जीव किस प्रकार की चिन्ता करे। यदि कोई प्रियजन मृत्यु को प्राप्त होता है तो दु:खार्ता स्वयं मरणोत्तगति का चिन्तन करते हैं। इसी प्रकार कठोपनिषद् में नचिकेता का प्रश्न है - येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये अस्तीत्येके नायमस्तीति चैके। अर्थात मनुष्य के मृत्यु के पश्चात् उसका अस्तित्व होता है अथवा नहीं? कोई अस्तित्व होता है, ऐसा मानता है तो कोई नहीं। अत: इस विषय में संशय है। इन सभी प्रश्नों का महत्व मनोरंजन आदि से भी अत्यधिक है। जो क्षणिक सुख देता है, उसका गुरूत्व भी अल्प ही होता है। जो अधिक समय अथवा चिरकाल से सुख को प्रतिपादित करता और देता है उसकी महिमा का तो क्या वर्णन। अतएव अन्य शास्त्र यथा समीपवर्ती भ्रान्ति दिखती है वैसे ही वह दर्शन शास्त्र भी निकटवर्ती है। क्योंकि दर्शन भी उसी प्रकार सुख को प्रतिपादित करता है। अत एवं दर्शन आवश्यक है। जिस प्रकार जन्म-मृत्यु चक्र होता है, उसी प्रकार जन्म के पश्चात् क्या होगा, ऐसी ही जिज्ञासा होती है। उस जिज्ञासा की समाधि/समाधान दर्शन ही करता है। अत: दर्शन विरूद्ध लोग जो कुछ भी करें, मृत्यु से भयभीत वे भी साक्षात अथवा प्रकारान्तर से मरणोत्तर की स्थिति के विषय में जिज्ञासा करते हैं।

दर्शनशास्त्र के अध्ययन की क्या आवश्यकता तो कहते हैं -

शास्त्रं सुचिन्तितमहो परिचिन्तनीयं,
आराधितोऽपि नृपतिः परिसेवनीयः।
अङ्के धृताऽपि तरूणी परिरक्षणीया
शास्त्रे नृपे च युवतै च कुतो वशित्वम्॥

1.3 दर्शन की व्यापकता

दर्शन के द्वारा सामान्य ज्ञान होता है, विशिष्ट ज्ञान भी उत्पन्न होता है। अत: ज्ञान और विज्ञान दर्शन है, यह स्थिति है। प्राणी सुख ही चाहता है, दु:ख को त्यागता है, यहाँ कोई मतभेद नहीं है। दर्शन सुख प्रदान करने, सुख प्राप्ति के उपाय ढूँढने तथा दु:ख से निवारण के लिए प्रवृत्त करता है। अत: नाना प्रकार के सुख और साधन जो भी भ्रान्ति रहित होकर प्रतिपादित होते है वह सभी दर्शन में स्वाभाविक रूप से अन्तर्भूत होते हैं। सुख-लाभ और दु:ख से निवृत्ति के कुछ दृष्ट उपाय तथा कुछ अदृष्ट उपाय होते हैं।

कुछ दृष्ट उपाय व्यवहारिक रूप से शास्त्र के बिना ही चलते हैं। पशु शास्त्र के बिना ही अन्न-पान आदि जानते हैं। कुछ दृष्ट उपायों को प्रधान रूप से विज्ञान आदि प्रतिपादित करता है। और अदृष्ट उपायों को धर्मशास्त्र प्रतिपादित करता है। यह समग्र (सम्पूर्ण) धर्मशास्त्र को दर्शन माना जाता है। जगत में विद्यमान स्थूल रूप से दो विभागों की

टिप्पणी

कल्पना की जा सकती है -चित् (चेतन) और अचित् (जड़)। ब्रह्मविद्या, आत्मविद्या, अध्यात्मविद्या, चित्तविद्या इत्यादि प्रधान रूप से चिदंश (चित् का अंश) को लेकर प्रवृत्त हुए है। इनमें प्रधान रूप से चित् के स्वरूप और उसके बन्ध-मोक्ष आदि पर विचार किया जाता है। धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, कलाशास्त्र (सौन्दर्यशास्त्र) इत्यादि सुख प्रदान करने हेतु नीति, नियम और उपायों को उपदिष्ट करते हैं। पदार्थ विज्ञान, गणित, भूगोल ये सभी अचिदंश (अचित का अंश) को लेकर प्रवृत्त हुए है। इनका चिदंश के विषय में मौन होना प्रायः परिलक्षित होता है। अतः ये अत्यन्त स्थूल जड़ विषयक शास्त्र केवल उदरपूर्ति तक होते हैं। शरीर आदि में रोग होने पर रोग के निवारण और रोग के प्रादुर्भाव पर प्रतिबन्ध लगाने हेतु आधुनिक अथवा प्राचीन शरीर-विज्ञान के आयुर्वेदशास्त्र आदि हैं। इन सभी प्रकार के शास्त्रों में भाषा शास्त्र और आन्वीक्षिकी की विद्या अर्थात् तर्कशास्त्र उपकारक होते हैं। जो तर्क के द्वारा सूक्ष्म निरीक्षण किया जाता है, वह धर्म कहा गया है, अन्य नहीं, ऐसा मनु का मत है। और यहाँ तर्क मीमांसा (पूजित विचार) है। केवल शास्त्र का आश्रय लेकर कर्तव्य का निर्णय नहीं होता है। युक्तिहीन विचार से तो धर्महानि होती है। यह विद्वानों का मत है। अतः यह स्पष्ट है कि सुख के साधन के लिए जो भी उपकारक है वह दर्शन की परिधि में है। अतः दर्शन की व्यापकता सर्वाधिक होती है। प्रायः सभी वाङ्मय साक्षात् रूप से, परम्परा अथवा दूरान्वय के द्वारा दर्शन के ही पोषक हैं।

पाठगत प्रश्न 1.2

9. पशुओं से मनुष्य का क्या अधिक विशेष है?
10. मानव कैसी जीवन शैली निर्धारित करता है?
11. जामिता के परिहार हेतु क्या उपाय है?
12. सुख दुःख के तारतम्य से किस शास्त्र की महिमा प्रकट होती है?
13. दर्शन किस प्रकार के उपायों को प्रतिपादित करता है?
14. सम्पूर्ण वाङ्मय साक्षात रूप में परम्परा अथवा दूरान्वय के द्वारा किसके पोशक हैं ?

1.4 दर्शन की प्रवृत्तिः-

दार्शनिकों के द्वारा प्रमाण, प्रमेय, प्रमाता और प्रमा रूप वाङ्मय रूप प्रपंच किस प्रयोजन को उद्देश्य करके अत्यन्त परिश्रम से प्रस्तुत किया गया है? दर्शनशास्त्र किस कारण प्रवर्तित होते हैं? उसके नियामक क्या है? यह कुछ कहा गया है।

1.4.1 पुरूषार्थः-

सभी प्राणी इष्ट-प्राप्ति की इच्छा करते हैं। अनिष्ट के परिहार की इच्छा करते हैं। वहाँ क्या इष्ट और क्या अनिष्ट है? सुख इष्ट और दुःख ही अनिष्ट है। इसीलिए सुख का उपाय ही इष्ट है। दुःख का कारण ही अनिष्ट है। सुख और उसके उपाय के बिना जीव अन्य कुछ भी नहीं चाहता। उसी प्रकार दुःख-निवारण (परिहार) और निवारण के उपायों के विषय में जिज्ञासा करता है।

सभी प्राणी सुख प्राप्त करने और दुःख दूर करने का प्रयास करते हैं। ऐसा कोई भी जीव नहीं जो दुःख की प्राप्ति और सुख के परिहार के लिए प्रयत्न करता है। जो भी दर्शन, विज्ञान आदि सम्प्रदाय अथवा संस्था का व्यक्ति स्वयं के शरीर, मन आदि को जिस प्रकार का सुख देता है वैसा ही ग्रहण करता है। कभी आपात काल में दुःख के उत्पन्न होने पर भी आगे सुख हो, ऐसी आशा द्वारा अवलम्बित रहता है। कोई दुःख को उत्पन्न करने वाला भी होता है, ऐसा देख जाता है। वह भी वस्तुतः व्यक्ति के अविवेक के कारण होता है। वह किसके द्वारा क्या प्राप्त करेगा? किसका क्या कारण है, ऐसा वह विवेक करने में असमर्थ होता है। इसीलिए भ्रान्ति उत्पन्न होती है। विष मृत्यु का कारण है, अतः विद्वान कभी भी विष नहीं खाते। यदि जीवन मृत्यु से भी अधिक दुःख उत्पन्न करने वाला प्रतीत हो (विष भी) खा लेते हैं।

सुख-प्राप्ति और भ्रान्ति के निवारण के लिए दर्शन प्रवर्तित होता है। सुख के स्वरूप और लक्षण को प्रतिपादित करने हेतु दर्शन प्रवर्तित होता है। सुख के उपायों को खोजने हेतु दर्शन प्रवर्तित होता है। सुख के उपायों को खोजने हेतु दर्शन प्रवर्तित होता है। दुःख क्या है, उसके कितने प्रकार है, उसके क्या कारण हैं, उसके परिहार के क्या उपाय है, इनके बोध हेतु दर्शन प्रवर्तित होता है। और यह प्रमाण-प्रमेय के प्रतिपादन द्वारा सिद्ध होता है। अतः सभी दर्शनों में ये दोनों प्रतिपादित होते हैं। प्रमा और प्रमाता प्रमेय के ही अन्तर्गत आते हैं। उसके अंगभूत तत्वों के द्वारा अन्य सभी प्रसंगों का वर्णन किया जाता है।

और जीव सुख के अधिकाधिक मात्रा की इच्छा करता है। अल्प के द्वारा संतुष्ट नहीं होता। यदि निरंन्तर नित्य सुख सम्भव हो तो कौन नहीं चाहेगा। कुछ दर्शनशास्त्र सुख केवल अनित्य है, ऐसा प्रतिपादन करते हैं। बहुतों के द्वारा नित्य और अनित्य सुख का प्रतिपादन किया गया है। उसका ही वर्णन नीचे किया जा रहा है।

सुख दो प्रकार का होता है। नित्य और अनित्य। नित्य सुख दर्शन के भेद से विविध प्रकार है। वह उत्पन्न नहीं होता है। न किसी भी प्रकार के कारण से वह सुख उत्पन्न होता है। अनित्य सुख जन्य होता है। उसका कोई भी कारण होता है।

आस्तिक समय में अनित्य सुख का कारण ही धर्म है। धर्म के बिना सुख नहीं होता है। धर्म भी जन्य है। वेदविहित यज्ञ आदि कर्मों से धर्म उत्पन्न होता है। उसका अन्य

नाम पुण्य है और उसके कुछ गुणविशेष हैं। उस धर्म का जनक (उत्पत्तिकर्ता) यज्ञ आदि है। अत: वह यज्ञ आदि भी धर्म कहलाते हैं। अत: पुण्य धर्म है। धर्म का जनक होने के कारण कर्म भी धर्म है, ऐसी स्थिति है।

दु:ख का भी कोई कारण तो होता ही है। सुख अथवा दु:ख बिना कारण के उत्पन्न नहीं होते हैं। शास्त्रों में तीन प्रकार के दु:ख वर्णित हैं। 'ऊँ शान्ति: शान्ति: शान्ति:', इसीलिए त्रि शान्ति की जाती है। सुख का क्या कारण है इसका असंदिग्ध ज्ञान आवश्यक है। उसके द्वारा जो इष्ट रूपी सुख है, उसका जो साधन है, उसकी निष्ठापूर्वक प्रवृत्ति हो। किसी सुख के कितने भेद होते हैं, वह भी व्यक्ति को स्पष्ट रूप से जानना चाहिए। उसके द्वारा प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार 'मदिष्टसाधनम्', ऐसा ज्ञान प्रवृत्ति का कारण होता है।

जो चाहा जाए वह अर्थ है। पुरूष का अर्थ पुरूषार्थ है। अथवा पुरूष द्वारा जो चाहा जाता है, वह पुरूषार्थ है। अर्थात् पुरूष, नर अथवा नारी जो कामना करते है, इच्छा करते हैं अथवा चाहते हैं, वह ही पुरूषार्थ है। पुरूष सुख चाहता है। अत: सुख ही समस्त प्राणियों का पुरूषार्थ है। सुख के प्रकार हैं। अत: पुरूषार्थ के भी प्रकार हैं। नित्य सुख को मोक्ष कहते हैं। अनित्य सुख को काम कहते हैं। इन्द्रिय द्वारा उत्पन्न प्रीति अथवा आनन्द ही काम है। काम के कारण को धर्म कहते हैं। धर्म के साधन को ही अर्थ कहते है। अर्थ ही धर्म की सामग्री धन आदि है। एवं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष वैदिक संस्कृति के चार सुप्रसिद्ध पुरूषार्थ हैं। उनमें काम और मोक्ष मुख्य हैं। काम का साक्षात् कारण धर्म है। धर्म का प्रयोजक अर्थ है। काम-लाभ हेतु धर्म और अर्थ ही सेवित हैं, अन्य अर्थ नहीं। अत: धर्म और अर्थ गौण है। मुख्य काम और मोक्ष में भी मोक्ष नित्य है। अत: मोक्ष ही परम पुरूषार्थ है। अर्थ अनित्य है, यह प्रत्यक्ष द्वारा जाना जाता है। इन्द्रिय द्वारा उत्पन्न सुख क्षणिक है, वह भी अनित्य है, यह अनुभव सिद्ध है। इसीलिए अनित्य सुख का कारण धर्म भी अनित्य ही होता है। कारण के न होने पर कार्य का भी अभाव होता है। अर्थात् यदि कारण होता है तो उसका कार्य भी होगा। कारण है किन्तु कार्य नहीं है, ऐसा नहीं होता है। वहाँ यदि कारण नित्य है, अर्थात् सदा रहता है तो ही कार्य भी नित्य रहेगा। कार्य अनित्य होने पर उसका कारण भी अनित्य ही होगा। इस प्रकार धर्म के कार्यभूत काम के अनित्य होने पर उसका कारणभूत धर्म भी अनित्य ही होगा।

वेदान्त में श्रुति एवं उसके अनुकूल युक्ति एवं अनुभव, यह तीनों सदा प्रमाण के द्वारा कहे जाते हैं। काम आदि के अनित्यत्व में श्रुति प्रमाण है - तद्यथेह कर्मचितो लोक: क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोक: क्षीयते। (इसका अर्थ है - इस संसार में धर्म, अर्थ, कर्म आदि लोक हैं तथा घट आदि जिस प्रकार नष्ट होते हैं वैसे ही लोकान्तर में स्वर्गादि पुण्यनिर्मित लोक नष्ट होते हैं।)

और स्मृति - ते तं भुक्तत्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति। (गीता 9.21)

अर्थ - जो पुण्य प्राप्त कर स्वर्ग जाते हैं, वे विशाल एवं विस्तीर्ण स्वर्गलोक को भोगते हैं। उस भोग का उत्पन्नकर्ता (जनक) पुण्य जब क्षीण होता है तब मर्त्यलोक (मनुष्यलोक) में मानव रूप को पुन: प्राप्त करते है। इस गीता की उक्ति से यह स्पष्ट है कि पुण्य नष्ट (क्षीण) होता है। अर्थात् धर्म और पुण्य अनित्य होते हैं। अत: उससे उत्पन्न सुख और काम भी अनित्य ही होते हैं।

इसीलिए कहा गया है - जो कृतक है वह अनित्य है, यह नियम दृष्ट (प्रत्यक्ष) और अनुमान दोनों द्वारा सिद्ध है। धर्म कर्मजन्य होता है। अत: अनित्य है। काम धर्मजन्य होता है। अत: अनित्य है। धर्मलाभ कैसे होता है, यह जैमिनिमुनि द्वारा उद्धृत धर्ममीमांसाशास्त्र में विस्तारपूर्वक वर्णित है। वहाँ प्रथम सूत्र है - अथातो धर्मजिज्ञासा।

इस प्रकार सिद्ध है कि मोक्ष ही परम पुरूषार्थ है। और वह प्रमा (ज्ञान) के द्वारा सुलभ है। अत: प्रमा क्या है? उसकी प्राप्ति का प्रमाण क्या है, यह जिज्ञासा होती है। अत: सभी दर्शनों में प्रमाण निरूपित है।

पुरूषार्थ के प्रतिपादन तथा उसके उपाय के प्रतिपादन हेतु दर्शनों की प्रवृत्ति सिद्ध है।

पुरूषार्थ के विषय में कुछ श्लोक यहाँ दिये गए हैं-

''धर्ममूल: सदैवार्थ: कामोऽर्थफलमुचयते।
संकल्पमूलास्ते सर्वे संकल्पो विषयात्मक:॥'' (महा.)

सरलार्थ - चारों पुरूषार्थों में अर्थ अन्ततम है। वह धर्ममूल अर्थात् धर्म का कारण है। अर्थ का फल काम है अर्थात् सुख। ये तीनों भी संकल्पमूलक हैं अर्थात् संकल्प इनका कारण है। तो संकल्प क्या है। वह ही विषयात्मक है। अर्थात् विषय ही संकल्प है।

''धर्मश्चार्थश्च कामश्च जीविते फलम्।
एतत्त्रयमवाप्तव्यमर्धपरिवर्जितम्॥'' (महा.)

सरलार्थ - जीव के जीवन में तीन प्रकार के फल होते हैं। वे हैं धर्म, अर्थ और काम। ये तीनों प्राप्त करने योग्य हैं। यह अवधारणा है कि अधर्म का परिवर्जन हो।

''धर्माविरूद्धो भूतेषु कामेऽस्मि भरतर्षभ।'' (गीता)

सरलार्थ - हे भरतर्षभ ! जीवों में धर्म मार्ग पर प्रवृत्त करने वाला काम रूप मैं वासुदेव हूँ। अर्थात् वेदविहित आचार के लिए व्यक्ति को प्रेरित करता है, निषिद्ध कर्मों से दूर करता है, विधि मार्ग में नियम का आचरण करने हेतु प्रेरित करता है, वह गुणविशेष काम है, सन्निकृष्ट विषय की अपेक्षा असन्निकृष्ट विषयों में प्रवृत्ति के कारण तृष्णारूप है।

''धर्मं समाचरेत् पूर्वं ततो ह्यर्थं धर्मसंयुतम्।
तत: कामं चरेत् पश्चात् सिद्धार्थ: स हि तत्परम्॥'' (महा.)

टिप्पणी

सरलार्थ – आरम्भ में वेद और उसके अनुकूल स्मृति ग्रन्थों में विहित कर्म करने चाहिए। वह कर्म पुण्य धर्म का जनक है। इस प्रकार अपने कर्म से प्राप्त अर्थ अर्थात् सुख-सामग्री अर्जित करना चाहिए। तथा प्राप्त अर्थ से काम (इच्छा) को प्राप्त करना चाहिए, सुख का अनुभव करना चाहिए। इस प्रकार कामतृप्त और विरक्त (व्यक्ति) अन्त में सिद्ध अर्थ मोक्ष को प्राप्त करे।

''पुण्यपापमयं देहं क्षपयन् कर्मसञ्चयात्।
क्षीणदेहः पुनर्देही ब्रह्मत्वमुपगच्छति॥ (महा.)

सरलार्थ – देह का कारण पाप और पुण्य है। वे दोनों कर्म से उत्पन्न हैं। कर्म से उत्पन्न संस्कार ही कर्म सञ्चय करते हैं। और वह फल उपभोग से नष्ट (क्षीण) होते हैं। और निष्काम कर्म से क्षीण होते हैं। इस प्रकार शास्त्रोक्त विधि के द्वारा पाप और पुण्य का कारणरूप कर्म सञ्चय जब क्षीण होता है तब शरीर धारण भी नष्ट होता है। तथा जिसका देह क्षीण हो जाता है वह क्लेश रहित, निरञ्जन, शुद्ध, पुण्यपाप से रहित होकर ब्रह्मत्व को प्राप्त हो जाता है, मुक्त हो जाता है।

''ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चित् शृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते॥'' (महा.)

सरलार्थ – दोनों भुजाओं को ऊपर करके ऊँचे स्वर में बोलता हूँ। तथापि कोई भी मेरे वचनों को नहीं सुनता है। लोग धर्म के बिना अर्थ और काम की इच्छा करते हैं। दोनों (अर्थ और काम) धर्म सेवा के द्वारा सुलभ हैं। धर्म से अर्थ और काम दोनों ही प्राप्त होते हैं। तथापि धर्म कहीं से सेवित अथवा पूजित नहीं है, यह दुःख है। यह व्यासदेव की उक्ति है।

सुख में लिप्त होने वालों का विभाग

अनेक बार पूर्व में कहा गया है कि जीव सुख चाहता है। सुख की अधिक मात्रा को चाहता है। सुख दीर्घकाल तक हो, यह चाहता है। यद्यपि शरीर क्षीण होता है तथापि शरीर का नाश न हो, ऐसा चाहता है। सशरीर अमर हो, ऐसी प्रबल इच्छा करता है। शरीर का नाश तो होता ही है। अतः शरीर नाश से श्रेष्ठ (परम) पुनः शरीर धारण हो, यह चाहता है। पुनः-पुनः प्राप्त जन्म सुखमय हो, यह चाहता है। कुछ लोग तो तब भी अनेक जन्मों में प्राप्त सुख को अल्प मानते हैं।

वह सुख कर्मजन्य होता है। अतः उसे अनित्य मानते हैं। इस प्रकार के सुख से विरक्ति होती है। जन्म-मृत्यु के चक्र को कैसे रोक सकते हैं, यह जिज्ञासा करते हैं। अतः चक्र का आरम्भ कैसे हुआ? चक्र के प्रवर्तक कौन है? चक्र की इष्ट गति कैसे होती है? अनिष्ठ गति कैसे होती है? उसका परिवर्तन कैसे होता है? गतिरोध कैसे होता है? ये सभी प्रश्न मनुष्यों में बहुतों के होते ही हैं। अतः जीवों के तीन दलों की कल्पना की जा सकती है।

प्रथम दल- एक ही जन्म है। उसमें अधिक सुख की अधिक काल तक कामना करने वाले। वे चार्वाक कहलाते हैं।

द्वितीय दल- अधिक सुख चिरकाल अर्थात् जन्म-जन्मान्तरों में हो, ऐसी कामना करने वाले। ये पूर्व-मीमांसक हैं।

तृतीय दल- जन्म-मरण चक्र के विराम की कामना करने वाले। ये मुमुक्षु हैं।

पाठगत प्रश्न 1.3

15. सभी प्राणी क्या इच्छा करते हैं?
16. सभी प्राणी क्या इच्छा नहीं करते हैं?
17. सुख कितने प्रकार का है और वह क्या है?
18. नित्य सुख क्या है?
19. अनित्य सुख क्या है?
20. अनित्य सुख का क्या कारण है?
21. दु:ख का क्या कारण है?
22. धर्म का क्या कारण है?
23. अधर्म का क्या कारण है?
24. प्रवृत्ति का कौन सा ज्ञान कारण होता है?
25. पुरूषार्थ पद की क्या व्युत्पत्ति है?
26. पुरूषार्थ कितने और क्या हैं?
27. गौण-मुख्य के भेद से पुरूषार्थों को लिखें।
28. मोक्ष के परम पुरूषार्थत्व में क्या हेतु है?
29. काम पुरूषार्थ के अनित्यत्व में कौन सी युक्ति प्रमाण है?
30. सुख में लिप्त रहने वालों के नाम लिखें।
31. परम पुरूषार्थ क्या है -

    (क) धर्म (ख) अर्थ (ग) काम (घ) मोक्ष

32. नित्य पुरूषार्थ क्या है-

टिप्पणी

(क) धर्म (ख) अर्थ (ग) काम (घ) मोक्ष

33. कौन सा पुरूषार्थ प्रत्यक्ष नहीं, अनुमेय होता है?

(क) धर्म (ख) अर्थ (ग) काम (घ) मोक्ष

34. अर्थ पुरूषार्थ की सामग्री क्या है?

(क) धर्म (ख) अर्थ (ग)काम (घ) मोक्ष

1.5 दर्शन का मूल

ऊपर जैसा कहा गया है वैसे ही सुख के स्वरूप और कारण हैं, जीव का स्वरूप और गति है, संसार-चक्र का स्वरूप और कारण है, स्व-अभीष्ट सुख के उपाय आदि मुख्य रूप से प्रतिपादित है। आस्तिक दर्शनों में जीव, सृष्टि, ईश्वर, ब्रह्म, बन्ध, मोक्ष, मोक्षसाधन आदि विषय प्रमेय हैं। और इनका भ्रमरहित ज्ञान होना प्रमाणों को प्रतिपादित करता है। सृष्टि के मूल में क्या है? सृष्टि के प्रारम्भ में क्या स्थिति थी? सत्य एक है अथवा अनेक, ये प्रश्न दर्शनों में आलोचनापूर्वक ग्रहण किये जाते हैं। उनके समाधान द्वारा पुरूषार्थ सिद्ध होते हैं। इस प्रकार के प्रश्न और उनके उत्तर ही दर्शन के मूल हैं।

इस प्रकार सभी दर्शन पुरूषार्थों को प्रतिपादित करके प्रवर्तित होते हैं। दर्शन के भेद से पुरूथार्थ भी भिन्न हो सकते हैं। पुरूषार्थ का लाभ पुरूषार्थ लाभ के उपाय के संशय-विपर्यय के ज्ञान के द्वारा संभव है। अतः अपने दर्शनों के अनुसार पुरूषार्थ और उसके उपाय दर्शनों में प्रतिपादित होते हैं। कभी सम्पूर्ण विषय का प्रकटन साक्षात् पुरूषार्थ के प्रतिपादन के द्वारा किया जाता है। कभी प्रमाण-प्रमेय आदि रूप में किसी पदार्थ के प्रतिपादन द्वारा किया जाता है। सभी आस्तिक श्रुति को प्रमाण रूप में अंगीकृत करते हैं। श्रुति में दर्शन का मूल प्राप्त होता है। श्रुतियों में ऋग्वेद सर्वप्रथम आता है। इसमें अनेक देवताओं की स्तुतियाँ परिलक्षित होती हैं। इन्द्र, अग्नि, वरुण, सविता, प्रजापति, हिरण्यगर्भ आदि देवता इसके कुछ उदाहरण हैं।

सृष्टि में अनेक प्रकार के परिवर्तन उत्पन्न होते हैं। यथा-वर्षा-विद्युत, सूर्य और उसका उदय-अस्त होना, चन्द्रमा और उसको उदय-अस्त होना, वायु, अग्नि, सम्पूर्ण विश्व इत्यादि। इन परिवर्तनों का नियन्ता कोई है, ऐसा ऋग्वेद में विहित है। इन देवताओं की स्तुति प्रधान रूप से ऋग्वेद में उपलब्ध है।

एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति (ऋ.वे. 1.164.46)

(सत्य है परन्तु विद्वानजन (ब्राह्मण) उसे विभिन्न नामों द्वारा प्रकट करते हैं।) पुरूष एवेदं सर्वम् (ऋ.वे. 10.90.2) (यह सम्पूर्ण विश्व वस्तुतः पुरूष ही है।) नासदासीन्नो सदासीत् (ऋ.वे.10.129.1) (सृष्टि के पूर्व असत् नहीं था। सत् नहीं था।)

हिरण्यगर्भः समवर्ततात्रे (ऋ.वे. 10.121.1) (हिरण्यगर्भ प्रजापति के समक्ष प्रपञ्च सृष्टि का प्रारम्भ हुआ। माया की अध्यक्षता से परमात्मा ने सृजन किया।) इन स्थलों पर सृष्टि की प्रागवस्था (प्रारम्भ की अवस्था), सृष्टि किससे उत्पन्न हुई, सृष्टि के प्रारम्भ में क्या उत्पन्न हुआ इत्यादि अनेक विषय ऋग्वेद में प्राप्त होते हैं। उपनिषदों में तो यह ही विषय प्रधान होता है। अथवा इस आत्मा से आकाश हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से पृथिवी, यह मन्त्र सृष्टि क्रम को विहित करता है। इस प्रकार यह ब्रह्माण्ड, सृष्टि और प्रपञ्च उपनिषदों में प्राप्त होते हैं। और वह महान विषय है। अतः उसका विस्तार यहाँ नहीं किया गया है। इस प्रकार सुस्पष्ट है कि दर्शन का मूल वेद में ही होता है।

1.6 भारतीय दर्शन की विशेषता

1.6.1 दर्शनों की व्यवहार योग्यता

शास्त्र और पुस्तक जगत् की सृष्टि, सर्जन तथा उत्पत्ति का वर्णन करते हैं। उनमें प्रतिपादित विषय मानव के व्यवहार योग्य हैं अथवा नहीं, यह विचार निश्चय ही करना चाहिए। वैसे ही किसी भी दर्शन की जीवन में कैसी उपयोगिता है, कैसी व्यवहारिकता है, यह विचार करके ही लोग प्रेरित होते है। जैसे- गणित की व्यवहारयोग्यता कितनी है तो कहते हैं कि जहाँ गणना करना हो वहाँ गणित उपयोगी है। वैद्यशास्त्र की उपयोगिता कितनी है तो कहते हैं कि जब शरीर रोगग्रस्त होता है तब रोग नाश के लिए चिकित्साशास्त्र होता है। एवं सभी शास्त्रों का विशिष्ट अवदान (योगदान) मानव जीवन में होता है।

यह जन्म सुखपूर्ण करने के लिए अगले जन्म को भी सुखमय करने और जन्म मृत्युरूप संसारचक्र को रोकने के लिए दर्शनशास्त्र प्रवर्तित होता है। अतः सुखमय-चक्र और चक्र के विराम के प्रतिपादक दर्शन अत्यन्त उपयोगी है। कोई भी जीव सुख के बिना नहीं जीता है। अतः प्रत्येक पद पर दर्शनशास्त्र मार्ग प्रदर्शक होता है। यथा अपरिचित स्थान पर जाने के लिए मार्ग में रूककर किसी को पूछता है कि 'आप मार्ग निर्दिष्ट करें'। अन्यथा अनिष्ट मार्ग द्वारा अनिष्ट स्थान की प्राप्ति होती है। उसी प्रकार सुखलाभ के लिए अपरिचित मार्ग पर चलने के लिए लोग निश्चित सुखलाभ के लिए दर्शन का ही आश्रय लेते हैं। दर्शन की इतनी उपयोगिता है। धर्महीन लोग पशुओं के समान होते है, ऐसे सुभाषित हैं। अतः भारतीय दर्शन तो भारतीयों की जीवन शैली ही है। दर्शन में कथित सिद्धान्तों को व्यवहार के लिए जीवन में प्रयुक्त करने हेतु स्मृतिशास्त्र प्रवर्तित होते हैं। उनमें विस्तार करना विधि निषेध आदि को प्रतिपाद्य करता है। जिनके द्वारा जीवन में धर्म का पालन होता है, उनका जीवन धर्म का आदर्शभूत होता है, उसके ही समान महामानवों का चरित्र रामायण, महाभारत पुराण और काव्यों में सम्यक् रूप में परिलक्षित होता है। अतएव सिद्धान्त, उनकी व्यवहारोपयोगिता पूर्वक विधिनिषेधमुख

टिप्पणी

के द्वारा प्रतिपादन और दर्शन के अनुसार जीवन, ऐसे तीन स्तरों से युक्त शास्त्र भी भारत में स्पष्टरूप में उपलब्ध होते है। रघु, राम आदि के जीवन में दर्शन प्रतिबिम्बित होता है। इस प्रकार मनुष्य दर्शनों में सिद्धान्तों को पढ़ें, स्मृति आदि में विधि और निषेध को जानें, महात्मा-पुरूषों के जीवन में उसके उपयोग को देखें। इसके द्वारा अपने जीवन में दर्शन के अनुसार व्यवहार सुबोध, सुलभ और सुकर होता है। इस प्रकार भारतीय दर्शनों की व्यावहारिकता होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

1.6.2 अधिकारी-भेद से दर्शनभेद

मानवों में नर-नारी, यह लैंगिक भेद है। आयु में शिशु, युवक और वृद्ध का भेद है। सत्व, रजस् और तमस् तीन गुण हैं। गुणों के तारतम्य के कारण मनुष्यों के तामसिक, राजसिक और सात्विक भेद होते हैं। उसमें भी रज-उपसर्जनीभूत तामसिक, तम-उपसर्जनीभूत राजसिक, सत्व-उपसर्जनीभूत राजसिक, रज-उपसर्जनीभूत-सात्विक भेद उपलब्ध होते हैं। अत एव वर्ण और आश्रम, ये दो विभाग भारतीय संस्कृति में ही परिलक्षित होते हैं। मानव ने आश्रमों में विभाजन किया है। वे आश्रम हैं - ब्रह्मचर्य-गृहस्थ- वानप्रस्थ और संन्यास। ब्रह्मचर्य आश्रम में विद्या की उपासना होती है। गृहस्थ आश्रम में विषय की उपासना। वानप्रस्थ आश्रम में संयम द्वारा तप का आचरण। और सन्यास आश्रम में विधि पूर्व इहलौकिक एवं परलौकिक कामनाओं के त्यागपूर्वक मोक्ष की साधना। मानवों के सत्व आदि गुणों के तारतम्य से ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र, चार वर्ण स्वभाव से (कर्म से) सिद्ध होते हैं, न की जन्म से। इस प्रकार ब्राह्मण के चार आश्रम, क्षत्रिय के चार आश्रम, वैश्य के चार आश्रम और उसी प्रकार शूद्र के भी। तमोगुण की अधिकता के कारण आश्रम व्यवस्था के लिए शूद्र स्वयं को योग्य नहीं मानते। इस प्रकार मानवों के आठ विभाग होते हैं।

इनमें पुनः वैराग्य के तारतम्य से अर्थात् मन्द-मध्यम-तीव्र वैराग्य के भेद से विधि और निषेध में भेद होते है। मानवों के तर्क-विचार में, कर्म में, भक्ति में और ध्यान आदि में मन प्रवणता के भेद से चार भेद होते है। और उसके द्वारा जो तर्क द्वारा मीमांसा करने के लिए प्रधान रूप से प्रवृत्त होते है, वे ज्ञानयोग के अधिकारी होते हैं। जो सकाम-निष्काम कर्मों में प्रवृत्त होते हैं, वे कर्मयोग के अधिकारी होते हैं। जो प्रेमास्पद ईश्वर की प्रेमपूर्वक पूजा और उपासना करने के लिए प्राकृतिक रूप से प्रवृत्त होते हैं, वे भक्ति योग के अधिकारी होते हैं। जो आसन, प्राणायाम, ध्यान आदि में नैसर्गिक प्रवृत्ति को अनुभव करते हैं, वे राजयोगी अथवा ध्यानयोगी हैं, ऐसा कह सकते हैं। यद्यपि सभी में तर्क-कर्म- प्रेम-ध्यान आदि होते हैं तथापि जिसकी प्रधानता होती है, उसके योग्य, उसका वह अधिकारी, इस प्रकार विभाग होता है। यह उसका अनेक जन्मार्जित स्वभाव-धर्म, स्वधर्म और पिण्डधर्म कहा जाता है। अत एव गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन को कहा- 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।'

नर-नारी भेद, वयसा-भेद, गुणों के तारतम्य से भेद, वैराग्यमात्र से भेद, मन प्रवणता द्वारा भेद, इस प्रकार मानव के बहुत से विभाग हैं जो स्वत: ही सिद्ध है। अत: कहे गए सभी विभागों के लिए सुख के उपाय भिन्न हैं। वे सभी एक प्रकार का सुख ही नहीं चाहते हैं। तमोगुणी निद्रा द्वारा सुख चाहता है। राजसिक कर्म द्वारा तथा सात्विक ज्ञान द्वारा सुख चाहते है। अत: मानवों की योग्यता में भेद है। जैसी योग्यता वैसी सुख-प्राप्ति। अत एव वैसे ही सुख सम्बन्धी उपाय की चेष्टा। सभी प्रकार के मानवों के उपाय का उपदेश दर्शन करता है। यद्यपि सभी दर्शन इतने समर्थ/प्रौढ़ नहीं हैं किन्तु दर्शन का यह कर्तव्य है कि शक्ति-भेद से व्यक्ति-भेद, व्यक्ति-भेद से अधिकार-भेद, अधिकार-भेद से विधान-भेद हो।

अतएव दर्शनों में विधान-बहुलता परिलक्षित होती है। किसी एक के लिए जो विधान है, वह अन्य के लिए निषिद्ध भी हो सकता है। यथा उदर-रोग की औषधि सिर संबंधी रोग के निवारण हेतु दी जाय तो यह इष्ट तो नहीं होता है, अनुचित ही होता है। इस प्रकार एक के लिए दर्शन का जो विधान है, वह अन्य के लिए हानिकारक हो सकता है। इस विषय को सरलता से समझने हेतु एक उदाहरण दिया गया है। देहली गन्तव्य स्थल है। देहली जाने हेतु वायुमार्ग, भूमार्ग तथा रेलमार्ग, ये तीनों मार्ग हैं। ये भी पुन: विभिन्न स्थानों के लिए देहली में गमन हेतु अनेक हैं। कोई देहली में भ्रमण की इच्छा होने पर किस मार्ग से और किस वाहन द्वारा जाएगा, यह प्रश्न है। जो निश्चित रूप से चण्डीगढ़ में है, उसका जितना धन है, तदनुसार उसके द्वारा विमान-रेलयान-वाहन आदि अवलम्बित किया जाता है। परन्तु वह उज्जयिनी आकर देहली जाए, ऐसा उपदेश उसके लिए अयुक्त ही है। इसी प्रकार जो निश्चय ही उज्जयिनी में है, वह वाराणसी जाकर देहली जाए, यह वचन निष्प्रयोजक एवं भ्रामक है। और जो नागपुर में रहता है, वह चैन्नई नगर जाकर देहली जाए, यह स्पष्ट रूप से ही अत्यन्त विपरीत उपदेश है। उसी प्रकार सभी मानव पूर्व-पूर्वजन्मों में अर्जित संस्कार द्वारा प्रभावित अपने मार्ग पर चलकर मोक्ष के समीप अथवा दूर होते हैं एवम् मोक्ष के अनेक मार्ग हैं। उनमें किसके मार्ग पर क्या है। अत: जो जिस मार्ग द्वारा प्रस्थित है, जितनी दूर आया है, वहाँ से आगे जाए, यह उपदेश ही साधना चाहिए (अर्थात् माना जाना चाहिए) वह ही उपदेश श्रेयस्कर है। इस प्रकार मार्ग-भेद द्वारा मार्ग में स्थिति के भेद बहुत प्रकार के होंगे, यह उपदेश हो, इसमें आश्चर्य नहीं। यदि ऐसा उपदेश न हो तो आश्चर्य हो की अनेक रोगों की एक ही औषधि कैसे हो? विविध आकार के लोगों के लिए एक आकार के पहनने योग्य वस्त्र कैसे हो?

1.6.3 पूर्वपक्ष-उत्तरपक्ष रूपों द्वारा मत की परिशुद्धि

दर्शन दूरदृष्टि, भविष्यत्-दृष्टि और अर्न्तदृष्टि प्रदान करता है। जीवनयापन के मार्ग का उपदेश और शिक्षा देता है। समय समय पर विद्वानों में भी मति-भेद एवं व्युत्पत्ति भेद के कारण मतभेद होते हैं। जब भी मतभेद होता है, तब कौन सा मत अच्छा है, इस

टिप्पणी

निर्णय के लिए कोई मार्ग आवश्यक होता है। और वह मार्ग शास्त्रार्थ के रूप में अंगीकृत किया गया है। शास्त्रार्थ किसी वाद-विवाद का सर्वसम्मत उपाय है। वहाँ युक्ति प्रधान होती है। पूर्वपक्ष अपने मत को स्थापित करता है। उत्तरपक्ष सामर्थ्य के अनुसार युक्ति द्वारा उसके खण्डन में प्रवृत्त होता है। वहाँ क्रमशः दो पक्षों में वाक्य-प्रबन्ध होता है। इस वाक्य-प्रबन्ध को कथा कहते हैं। अतः भारतीय दर्शन का वैशिष्ट्य यह है कि युक्ति द्वारा मत की परिशुद्धि की जाती है। कोई भी मत बलात् ग्रहण नहीं किया जाता है। यदि वादी-प्रतिवादी का समय-भेद के कारण एकत्र वाद सम्भव नहीं होता है तो दोष होने पर पूर्व में लिखे गए ग्रन्थ के खण्डन में परिवर्ती विद्वान प्रवृत्त होते हैं।

1.6.4 धर्म से दर्शन पृथक नहीं है

धर्मशास्त्र और दर्शन, यह विभाग भारत में ही दिखाई देता है। पाश्चात्य देशों में इन दोनों का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। धर्मशास्त्र जीवन पर आश्रित है। दर्शन किसी बुद्धिमान का विस्तृत चिन्तन है, ऐसा मानना है। दर्शन का धर्मशास्त्र पर प्रभाव नहीं है, मानव जीवन पर तो नहीं ही है। परन्तु ऐसा भारतीय दर्शनों में नहीं। भारतीय दर्शन में जो लक्ष्य निश्चित किया जाता है, उसके लाभ के लिए धर्मशास्त्र प्रवर्तित होता है। मानव जीवन भी दर्शनशास्त्र में कहे लक्ष्य की सिद्धि हेतु नियन्त्रित होता है। अतः भारतीय दर्शन धर्म से अथवा जीवन से भिन्न नहीं है। दर्शन, धर्मशास्त्र और जीवन, सभी एक सूत्र रूप है। एक दूसरे के पूरक हैं। एक दूसरे के साधक हैं। यह पाश्चात्य दर्शन से भारतीय दर्शन का महान भेद है।

पाठगत प्रश्न 1.4

35. दर्शन के प्रतिपाद्य विषय स्थूल रूप से क्या हैं?
36. भारतीय दर्शन व्यवहार-योग्य है अथवा नहीं?
37. दर्शन, स्मृति पुराण आदि क्या करते हैं?
38. भारतीय दर्शन का धर्म पर प्रभाव है अथवा नहीं?
39. यह आश्रम है -

    (क) संन्यास (ख) ब्राह्मण (ग) तमः (घ) क्षत्रिय

40. यह वर्ण है-

    (क) ब्रह्मचर्य (ख) गृहस्थ (ग) क्षत्रिय (घ) सत्व

41. यह गुण नहीं है -

    (क) सत्व (ख) शूद्र (ग) रज (घ) तम

1.7 दर्शनों में मतभेद का कारण

मतभेद के अनेक कारण हैं। उदाहरण द्वारा कुछ प्रकट किये गए हैं।

दार्शनिकों के सामर्थ्य-भेद से दर्शनों में कलह - कुछ नेत्रहीन लोग गज को देखने गए। उनमें से किसी ने हाथी के पूँछ को स्पर्श करके कहा की यह हाथी झाड़ू के समान है। किसी ने पद स्पर्श करके कहा की यह हाथी स्तम्भ के समान है। अन्य ने कान स्पर्श करके निर्णय किया की हाथी सूप के समान है। इस प्रकार सभी अंधों ने हाथी के किसी अवयव को स्पर्श करके निर्णय किया कि हाथी इस प्रकार का है। जब उनके द्वारा परस्पर आलाप किया गया तो उनमें विवाद उत्पन्न हुआ। प्रत्येक नेत्रहीन का मत था की गज स्वयं द्वारा जैसा अनुभूत हुआ वैसा ही है, अन्यथा नहीं। इनमें कलह का कारण स्पष्ट ही है। कलह की व्यर्थता भी स्पष्ट है। उसी प्रकार सत्यान्वेषण में लगे विद्वान सत्य का किस उपाय द्वारा क्या अनुभव प्राप्त कर निर्णय करते हैं कि यह ही अन्तिम सत्य है, इसके अतिरिक्त सत्य नहीं हो सकता है। अत: दार्शनिकों में कलह होती ही है। यथा दृष्टि शून्य लोग स्व चाक्षुषदोष के कारण दूषित होकर गज के वास्तविक स्वरूप को नहीं जानते तथा कलह में मग्न होकर अपने सामर्थ्य के अभाव से सत्य वस्तु के ज्ञान-प्राप्ति में असमर्थ होते हैं। सत्य एक ही होता है। मतभेद से भिन्न नहीं होता। मतों के भेद से मार्ग भिन्न होते है। जैसे मत होते हैं वैसे ही उसके मार्ग होते हैं। सत्य तो एक ही है।

अधिकारी भेद से दर्शनों में कलह:

ऊपर अधिकारी का भेद संक्षेप रूप से निरूपित किया गया है। अधिकारी-भेद से भी सत्य के प्रतिपादन में भेद होता है। सत्य मन्द बुद्धि जनों के लिए दुर्बोध होता है। अत: उनके लिए उपयोगी शास्त्रों में सरल रूप का प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार का प्रतिपादन प्रथम दृष्टि में परस्पर विरोधी प्रतिभासित होता है। फिर भी वह उपासकों की सुकरता के लिए कल्पित है।

शास्त्रेषु प्रक्रियाभेदैरविद्यैवोपवर्ण्यते।
अनागमविकल्पा तु स्वयं विद्योपवर्तते॥ (वाक्यपदीय 2.233)

उपाय: शिक्षमाणानां बालानां चोपलालना:।
असत्ये वर्त्मनि स्थित्वा तत: सत्यं समीहते॥ (वाक्यपदीय 2.238)

सरलार्थ- विभिन्न शास्त्रों में विभिन्न प्रक्रियाएँ होती है। उनमें अविद्या ही वर्णित है। तथापि उन अविद्याओं के द्वारा विद्या स्वयं ही प्रकट होती है। अत: अविद्या ही विद्या का उपाय है।

वर्णित उपाय क्रीड़ा (उपलालन) एवं छल (प्रतारणा) के ही समान हैं। उपलालन का अर्थ है खेलना। शिशुओं के मनोरञ्जन के लिए कोई भी क्रीडनक दिया जाता है, उसी

टिप्पणी

प्रकार ये उपाय होते हैं। जिससे वहाँ असत्य रूप में शास्त्र की प्रक्रियामात्र के अर्थ में स्थित होकर उनके अवलम्बन से सत्य की प्राप्ति होती है। और अन्य-

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्फलस्याशरीरिणः।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणोरूपकल्पना॥ (श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषद 1.7)

सरलार्थ - ब्रह्म चिन्मय, अद्वैत, निष्फल और शरीर रहित है। तथापि उपासकों के कार्यपूर्ति हेतु मत्स्य, कूर्म आदि रूप द्वारा विभिन्न रूप धारण कर अवतरित होता है।

अतः सिद्ध है कि अधिकारी-भेद से उपाय-भेद होते हैं। परन्तु यह व्यवस्था अल्प-बुद्धि वाले व्यक्तियों द्वारा नहीं समझी जाती है। अतः व्यवस्था में दोष देखकर परस्पर कलह में लिप्त रहते हैं तथा जगत् में अशान्ति फैलाते हैं।

यथा शिक्षण-व्यवस्था में प्रथम कक्षा से स्नातकोत्तर कक्षा तक जिस प्रकार से विभाग होते हैं। उसमें भी अनेक विषय तथा अनेक शाखाएँ होती हैं। प्रथम कक्षा आदि रूप द्वारा विभाग बालकों के लिए होता है। विषयभेद और शाखा भेद रूचि के भेद तथा बालकों के विषय ग्रहण के सामर्थ्य के भेद से किए जाते हैं। परन्तु एक वर्ष के शिशु को जो भी द्वादश कक्षा में प्रवेश करायेगा वह मूर्ख हास्य का पात्र होगा। शिशु को उसके योग्य कक्षा में प्रवेश देना चाहिए। यहाँ निम्न कक्षाओं में विषय के प्रतिपादन के लिए अवलम्बित अनेक उपाय वस्तुत असत्य ही हैं। परन्तु अध्ययन में सुकरता उत्पन्न करते हैं। अतः उनकी उपयोगिता है। उसी प्रकार दर्शनों में भी होता है। परन्तु उसकी व्यवस्था को समझने में असमर्थ कलह करते हैं।

1.8 दर्शनों में साम्यता

दार्शनिकों में अनेक मतभेद हैं। तथापि साम्यता भी होती है। विरोध के जैसे कारण होते हैं उससे भी अधिक मेल के होते हैं। अतः कुछ समानताएँ भी द्रष्टव्य हैं।

1. **दुःख** - सभी दर्शनों के मत में दुःख है, ऐसा माना गया है। जन्म, बुढ़ापा, रोग, मृत्यु, जीवन में सभी दुःख ही है। उसके परिहार की इच्छा जीवों की होती है। परिहार के उपाय हैं। चार्वाक को छोड़कर अन्य सभी मानते हैं कि दुःख का समूल नाश सम्भव होता है। एवम् दुःख का मूल तृष्णा है। तृष्णा के नाश से दुःख का नाश होता है।

2. **सुख** - सभी जीव सुख चाहते हैं। सुख के उपाय का प्रतिपादन ही दर्शन का कर्तव्य है। सुख-लाभ के लिए सुख के उपाय जानने चाहिए। सुख-ज्ञान और सुख के उपााय का ज्ञान प्रमाण के अधीन होता है। अतः प्रमाण भी प्रतिपादित किये जाने चाहिए।

   जैसे- अनित्यम् असुखं लोकम् इमं प्राप्य भजस्व माम्॥ (गीता)

अर्थात् संसार अनित्य और सुखहीन है। अत: इस लोक में जन्म प्राप्त कर भगवान की उपासना करो। अत: सभी को सुख प्राप्त हो, यह परम उद्देश्य बनाकर सभी दर्शन प्रवर्तित होते हैं।

3. **जीव** - जीव होता है। जीव के स्वरूप के विषय में उन दर्शनों में मतभेद हैं। जीव शरीर के अतिरिक्त भी है, यह मत है। उस जीव का बन्ध है। बन्ध से मोक्ष (मुक्ति) हो सकती है और होती है। मोक्ष का साधन होता है। दर्शनों में जीव के स्वरूप के विषय में, बन्ध-मोक्ष के स्वरूप के विषय में और मोक्ष के साधन के विषय में मतभेद हैं। चार्वाक के मत में शरीर ही जीव है, उससे भिन्न नहीं, न तो बन्ध है और न मोक्ष है।

4. **ईश्वर** - चार्वाक और बौद्ध को छोड़कर अन्य सभी दर्शन स्वीकार करते हैं - जगत का सृष्टिकर्ता कोई ईश्वर है। वह ही नियन्ता भी है। वह ही संहारकर्ता भी है। दर्शनों में ईश्वर के स्वरूप के विषय में मतभेद हैं। सृष्टि प्रक्रिया के विषय में मतभेद हैं।

5. **ऋत** - संसार का प्रचलन नियमबद्ध है। वह नियम 'ऋत' कहलाता है। इस नियम का अतिक्रम किसी के द्वारा भी नहीं किया जा सकता। यद्यपि बौद्ध और जैन इस नियम का नाम ऋत नहीं मानते किन्तु उसके समान नियम को मानते हैं। चार्वाक ऋत को नहीं मानते।

6. **परमपुरूषार्थ** - मोक्ष के स्वरूप में मतभेद हैं। तथापि मोक्ष ही परम पुरूषार्थ है, ऐसा सभी का मत है। अत: सभी दर्शन पुरुषार्थ प्राप्ति के लिए हैं। पुरुषार्थ के विषय में उनमें मतभेद हैं।

7. **अविद्या** - अविद्या ही दु:ख का हेतु है। उस अज्ञान से आवृत ज्ञान से जीव मोहग्रस्त होते है, ऐसी गीता की उक्ति है। अर्थात् ज्ञान अज्ञान द्वारा आवृत होता है। अत: लोग मोहग्रस्त होते हैं। चार्वाक अविद्या का निराकरण करते हैं।

8. **कर्मवाद** - 'जैसा कर्म वैसा फल' ही कर्मवाद का मूलस्वरूप है। एक जन्म में किया गया कर्म अन्य जन्मों में फल उत्पन्न करता है। आसक्ति कर्म का मूल है। आसक्त जीव जो जो कर्म करता है, उसका कर्म-फल भोगने के लिए उपयुक्त देह धारण करता है। मुक्ति-लाभ से पूर्व यह देह से देहान्तरगमनरूप चक्र अनिरूद्ध होता है। कर्म द्वारा सुफल और कुफल होता है, यह माना गया है। अर्थात् कर्मसिद्धान्त को समझते हैं। जन्म-मरण रूप संसार-चक्र को स्वीकार करते हैं। स्थूल शरीर में जीव रहता है। और वह मृत्यु के पश्चात् भिन्न शरीर का आश्रय फल उत्पन्न करने हेतु लेता है, ऐसा अनुमान करते हैं। चार्वाक कर्मवाद को स्वीकार नहीं करता है।

9. **युक्ति** - दर्शन युक्ति पर प्रतिष्ठित होते हैं। साधक-बाधक युक्ति के प्रयोग से स्थापित किसी भी मत को स्वीकार करते हैं। एवम् किसी मत के अंगीकृत होने

टिप्पणी

से पूर्व दार्शनिक उसके खण्डन में प्रवृत्त होते हैं। अत: दार्शनिकों में खण्डन-मण्डन की विशिष्ट परम्परा है, यह सभी में समान है। विद्वान किसी के मत के खण्डन से पूर्व उसका सम्यक् रूप से उपस्थापन करते हैं।

10. **दर्शन की व्यावहारिकता** - दर्शन के द्वारा प्रतिपाद्य तत्वों की जीवन उपयोगिता है अथवा नहीं, यह भारतीय दर्शनों में साम्य है। यदि जीवन उपयोगी न हो तो उसके मत को स्वीकार नहीं करते हैं। चार्वाक भी अपने दर्शन की व्यावहारिकता को आवश्यक रूप से प्रतिपादित करते हैं। वेद कहते हैं कि संसार में चार्वाक का मत स्वत: प्रसारित हुआ है। अत: यह लोकायत मत है। भारतीय दर्शनों के दैनिक जीवन में व्यावहारिकता निश्चित ही होती है। कोई भी दर्शन वचनमात्र नहीं होता है।

11. चार्वाक दर्शन को छोड़कर सभी ओंकार को स्वीकार करते हैं। 'ओम मणिपद्मे द्रम्' ये बौद्धों का सुप्रसिद्ध मन्त्र है। जैन में - 'ओम् एकाक्षरं पञ्चपरमेष्ठिनामादि पदम्'। कहा गया है कि - 'अरिहन्ता असरीरा आयरिया तह उवज्झाया मुणियाम्'। ओंकार को परमेष्ठी के आदिपद के रूप में स्वीकार किया गया है। आस्तिकों में सभी दर्शन यह स्वीकार करते हैं।

12. चार्वाकों के अतिरिक्त अन्य सभी दर्शनों में पूजा, माला, मन्त्र-जप, तीर्थाटन, तीर्थों में स्नान और मन्दिरों को स्वीकार किया गया है। पाप, पुण्य, स्वर्ग और देवता ही है, यह स्वीकार करते हैं।

13. **प्रमाण**- चार्वाक के मत में सुख और सुखोपाया केवल प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा प्राप्य हैं। अन्य के मतों को आगे 'प्रमाण' के प्रसंग में स्पष्ट किया जाएगा।

14. सभी दर्शन प्रमाणों की सहायता से सत्यान्वेषण में प्रवृत्त होते हैं। उन प्रमाणों को आगे प्रतिपादन करेंगे।

15. **मत प्रवर्तक आचार्य** - चार्वाक मत के प्रवर्तक देवगुरु बृहस्पति स्वयम् आस्तिक ही माने गए है। गौतम बुद्ध वैदिक कुल के महाराज शुद्धोदन के पुत्र थे। गौतम ने गृह त्याग के पश्चात् बहुत समय तक अन्य अनेक सम्प्रदायों में जीवनयापन किया। अत: उनमें वैदिक संस्कार थे। बहुत से सम्प्रदाय से जो उचित था, उनके द्वारा संग्रहित किया गया। उनके द्वारा ध्यान का मार्ग जाना गया। उन सम्प्रदायों में तप का आचरण किया जाता था। उसके द्वारा उनका चित्त शुद्ध हुआ। अत: अन्त में अल्प प्रयास से उन्होंने सिद्धि को प्राप्त किया और उन्होंने प्रतिपादित किया - 'आत्मदीपो भव'। जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकरों में भगवान महावीर मगध राज्य के क्षत्रिय कुल के महाराज सिद्धार्थ के पुत्र थे। उनकी माता का नाम त्रिशला तथा पत्नी का नाम यशोदा था। तपस्या के द्वारा कैवल्य प्राप्त कर धर्म का प्रवचन दिया। जैन धर्म के ऋषभ, अजितनाथ, अरिष्टनेमि, इन तीनों तीर्थंकरों के नाम यजुर्वेद में प्राप्त होते हैं।

पाठगत प्रश्न 1.5

42. गौतम बुद्ध के पिता का नाम क्या था?

43. महावीर के पिता का नाम क्या था?

44. ये दार्शनिक ओंकार को स्वीकार नहीं करते हैं -

(क) चार्वाक (ख) जैन (ग) बौद्ध (घ) सांख्य

1.9 दर्शनशास्त्र के प्रकार

दर्शन कितने हैं, यह निर्णय कठिन (दुष्कर) है। गुणरत्न और मणिरत्न जैन पण्डित का मानना है कि दर्शन की संख्या और स्वरूप निर्धारित करना सम्भव नहीं है। अनेक मुनियों का मत प्रमाण है कि महाभारत में युधिष्ठिर का वचन (कथन) है। दर्शन की संख्या कुछ 363 है। विभिन्न मत के अनुसार दर्शन की संख्या प्रदर्शित करते है-

सम्मतितर्क मत -

दर्शन 363 हैं। उनमें क्रियावादी 180, अक्रियावादी 84, आज्ञावादी 67, वैनयिक 32 हैं। यह मत बहुतों के द्वारा नहीं माना जाता है।

सर्वसिद्धान्तसंग्रह मत

(1) अक्षपाद (गौतम), (2) कणाद, (3) कपिल, (4) जैमिनि, (5) व्यास, (6) पतञ्जलि, (7) बृहस्पति, (8) आर्हत, (9) बुद्ध इन आचार्यों के नाम उल्लिखित कर दर्शन नौ (9) कहे गए हैं। वहाँ भी भाट्ट, प्रभाकर और मुरारि मिश्र के भेद से जैमिनीय मीमांसक तीन प्रकार के हैं। और बौद्ध माध्यमिक-योगाचार- सौत्रान्तिक-वैभाषिक के भेद से चार प्रकार के हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में अवधूत मार्ग भी परिलक्षित होता है।

अग्नि पुराण मत

1) तर्कशास्त्र, 2) क्षणभंगवाद, 3) भूतचैतन्यवाद, 4) स्वप्रकाश-ज्ञानवाद (प्रभाकर और वेदान्ती), 5) अनेकान्तवाद (जैन), 6) शैवसिद्धान्त, 7) वैष्णवमत, 8) शाक्तसिद्धान्त, 9) सौरसिद्धान्त, 100 ब्राह्मसिद्धान्त, 11) सांख्यसिद्धान्त

महाकवि राजशेखर का मत

1) नैयायिक, 2) वैशेषिक, 3) जैन, 4) बौद्ध, 5) सांख्य, 6) मीमांसक, 7) चार्वाक, यह काव्यमीमांसा में राजशेखर मानते हैं।

टिप्पणी

षड्दर्शनसमुच्चय-मत

1) बौद्ध, 2) नैयायिक, 3) सांख्य, 4) जैन, 5) वैशेषिक और 6) जैमिनि

सर्वदर्शनसंग्रह-मत

1) चार्वाक, 2) बौद्ध, 3) जैन, 4) रामानुज, 5) पूर्णप्रज्ञ, 6) नाकुलीशपाशुपत, 7) शैवदर्शन, 8) प्रत्यभिज्ञादर्शन, 9) रसेश्वर, 10) वैशेषिक, 11) न्याय, 12) जैमिनि, 13) पाणिनि, 14) सांख्य, 15) योग, 16) शंकर-मत

वैदिक दर्शनों में भी तर्कप्रधानशाखा और शब्दप्रधानशाखा, यह विभाग सुगम है। जिस वेद की प्रामाणिकता तर्क के द्वारा सिद्ध होती है, वह तर्कप्रधान दर्शन हैं। यथा - न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, सांख्य और योग तर्कप्रधान हैं। पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा शब्दप्रधान हैं।

इस प्रकार विभिन्न ग्रन्थों में आचार्य भिन्न शैली को अवलम्बित कर दर्शन संख्या को प्रदर्शित करते हैं। अतिप्रचलित एवं बहुसम्मित दर्शन नीचे दिये गए हैं।

1.9.1 दर्शन विभाग

भारत में आस्तिक और नास्तिक के भेद से दर्शनों के दो भाग किये जाते हैं। आस्तिक क्या हैं और नास्तिक क्या हैं? वेद का प्रमाण्य जो दर्शन स्वीकार करते हैं, वे आस्तिक दर्शन हैं। और जो वेद का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते हैं, वे नास्तिक दर्शन हैं, ऐसा विभाजन सुबोध है। जो वेदप्रतिपाद्य को स्वीकार करते हैं, समर्थन करते तथा जानते है, वे आस्तिक दर्शन हैं। जो वेद के प्रतिपाद्य का विरोध करते हैं वे नास्तिक दर्शन हैं। नास्तिक वेदनिन्दक हैं, ऐसा मनु मुनि का मत है। तीन नास्तिक दर्शन हैं। छः आस्तिक दर्शन हैं।

नास्तिक दर्शन हैं - 1) चार्वाक दर्शन, 2) जैन दर्शन, 3) बौद्ध दर्शन। बौद्ध दर्शन के चार भेद हैं। वे हैं - 1) माध्यमिक दर्शन, 2) योगाचार दर्शन, 3) सौत्रन्तिक दर्शन, 4) वैभाषिक दर्शन। इस प्रकार नास्तिक दर्शन कुल छः होते हैं।

छः आस्तिक दर्शन हैं - 1) न्याय दर्शन, 2) वैशेषिक दर्शन, 3) सांख्य दर्शन, 4) योग दर्शन, 5) पूर्वमीमांसा दर्शन, 6) उत्तरमीमांसा दर्शन। यहाँ उत्तरमीमांसा पद द्वारा वेदान्त दर्शन का बोध होता है।

वहाँ गौतम द्वारा न्याय दर्शन, कणाद द्वारा वैशेषिक दर्शन, कपिल द्वारा सांख्य दर्शन, पतञ्जलि द्वारा योग दर्शन, जैमिनि द्वारा पूर्वमीमांसा और व्यास द्वारा वेदान्त दर्शन प्रणीत है। और एक व्यासप्रणीत वह वेदान्त दर्शन भी बहुत से विद्वानों द्वारा द्वैत-अद्वैत-विशिष्टद्वैत-शुद्धद्वैत के प्रभेद से नाना प्रकार का है - जैसे बुद्ध के एक उपदेश होने पर भी शिष्यों के

बुद्धि के वैचित्र्य से स्व-स्वबुद्धि के अनुसार पदार्थ की कल्पना द्वारा योगाचार-माध्यमिक-सौत्रान्तिक एवं वैभाषिक भेद हुए। उसी प्रकार वेदान्त के भी भेद हैं।

षड् दर्शनानि मेऽंगानि पादौ कुक्षिः करौ शिरः।
तेषु भेदन्तु यः कुर्यादंगच्छेदको हि सः॥
एतान्येव कुलस्यापि षडंगनि भवन्ति हि।
तस्मान्मदात्मकं कौलमहं कौलात्मकः प्रिये॥

भावार्थ- शिव ने पार्वती को कहा- ये षड् दर्शन मेरे ही अंग हैं। यथा - शरीर में पाद (पैर), कुक्षि (उदर), कर (हाथ), सिर इत्यादि अंग होते है, उसी प्रकार। अर्थात् एक-दूसरे के पूरक हैं, न की विरोधी। और भी जैसे सभी अंगों की विशिष्ट उपयोगिता होती है वैसे ही दर्शनों की भी विशिष्टि उपयोगिता है। पैरों का कार्य सिर नहीं करता, ना ही सिर का कार्य पैर करते हैं। वैसे ही यहाँ जानना चाहिए। अत एव इन अंगों में भेद है ऐसा जो सोचता है वह तो अंगछेदक के समान है। अर्थात् कोई भी अंग अनुपयोगी है, ऐसा मानकर उसका छेदन करना जैसे मूर्खता करना है, वैसे ही दर्शन में भी है।

प्रणेता	दर्शन
बृहस्पति	चार्वाक
महावीर	जैन
गौतम बुद्ध	बौद्ध
कपिल	सांख्य
पतञ्जलि	योग
कणाद	वैशेषिक
गौतम	न्याय
जैमिनि	पूर्वमीमांसा
बादरायण व्यास	उत्तर मीमांसा (वेदान्त)

जगत में दर्शन के जो अल्प भी विचार उत्पन्न हुए उसके प्रथम आचार्य कपिल ही हैं। कपिल का उल्लेख वेदों में भी उपलब्ध होता है। यथा-ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्ति जायमानं च पश्येत। वह जन्म से सिद्ध थे। अतः कपिल को श्रद्धापूर्वक स्मरण एवं नमन कर दर्शन के अध्ययन में प्रवृत्त होना चाहिए। सम्पूर्ण जगत कपिल का ऋणी है।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 1.6

45. अग्निपुराण में कितने दर्शन उल्लिखित हैं?

46. सर्वदर्शन संग्रहकार के मतानुसार कितने दर्शन है?

47. आर्हत दर्शन के प्रणेता कौन है?

(क) कणाद (ख) गौतम बुद्ध (ग) महावीर (घ) अक्षपाद

48. अक्षपाद का अपर नाम क्या है?

(क) कणाद (ख) गौतम बुद्ध (ग) महावीर (घ) गौतम

49. पूर्वमीमांसा के प्रणेता कौन हैं?

(क) कणाद (ख) गौतम बुद्ध (ग) महावीर (घ) जैमिनि

50. कपिल प्रणीत दर्शन कौन सा है?

(क) न्याय (ख) वैशेषिक (ग) पाशुपत (घ) सांख्य

51. बृहस्पति प्रणीत दर्शन कौन सा है?

(क) न्याय (ख) वैशेषिक (ग) पाशुपत (घ) चार्वाक

52. सभी दर्शनों के आद्य आचार्य कौन हैं?

(क) कणाद (ख) व्यास (ग) गौतम (घ) कपिल

1.10 प्रमाण

कौन सा दर्शन कितने प्रमाणों का उल्लेख करता है, संक्षेप में कहते हैं। इसलिए कारिकाएँ हैं–

प्रत्यक्षमेकं चार्वाकाः कणाद-सुगतो पुनः।
(आर्हताः प्रत्यक्षमनुमानं चेति)
अनुमानं च तच्चापि सांख्याः शब्दं च ते उभे॥
न्यायैकदेशिनोऽप्येवमुपमानं च केचन।
अर्थापत्या सहैतानि चत्वार्याह प्रभाकरः॥
(मध्वाः प्रत्यक्षं शब्दश्चेति)
अभावषष्ठान्येतानि भाट्टा वदान्तिनस्तथा।
संभवैतिह्ययुक्तानि तानि पौराणिकाजगुः॥

सरलार्थ- चार्वाक प्रत्यक्ष ही केवल एक प्रमाण है ऐसा मानते हैं। कणाद - वैशेषिक, बौद्ध और आर्हत - जैन प्रत्यक्ष और अनुमान, ये दो प्रमाण मानते हैं। सांख्य और नैयायिक प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द, ये तीन प्रमाण मानते हैं। कुछ नैयायिक तो उपमान को भी स्वीकार करते हैं। इस प्रकार नैयायिक चार प्रमाण स्वीकार करते हैं, ऐसी प्रसिद्धि है। प्रभाकर मीमांसक प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, ये पाँच प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। भाट्ट मीमांसक और वेदान्ती प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि , ये छः प्रमाण स्वीकार करते हैं। वेदान्तियों में भी विशिष्टाद्वैत-मत में प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम प्रमाण ही माने गए हैं। पौराणिक तो प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, सम्भव और ऐतिह्य, ये आठ प्रमाण स्वीकार करते हैं।

पाठगत प्रश्न 1.7

53. बौद्ध मत में यह प्रमाण नहीं है।

(क) अनुमान (ख) प्रत्यक्ष (ग) शब्द (घ) इनमें से कोई भी नही

54. शब्द प्रमाण को ये स्वीकार नहीं करते हैं।

(क) पौराणिक (ख) वेदान्ती (ग) भाट्ट (घ) बौद्ध

55. अनुमान प्रमाण को ये स्वीाकर नहीं करते हैं।

(क) चार्वाक (ख) वेदान्ती (ग) भाट्ट (घ) बौद्ध

56. अर्थापत्ति को ये स्वीकार नहीं करते हैं।

(क) पौराणिक (ख) वेदान्ती (ग) भाट्ट (घ) नैयायिक

57. प्रत्यक्ष और अनुमान, ये दो ही प्रमाण है, ऐसा कौन नहीं कहते हैं?

(क) चार्वाक (ख) वैशेषिक (ग) आर्हत (घ) नैयायिक

58. स्तम्भों में स्थित परस्पर सम्बद्धों को मिलाएँ।

क-स्तम्भ	ख-स्तम्भ
1. प्रमाण	(क) दृश्-धातु के भाव में ल्युट्
2. प्रमाता	(ख) दृश्-धातु के कर्म में ल्युट्
3. प्रमेय	(ग) दृश्-धातु के करण में ल्युट्
4. प्रमा	(घ) दृश्-धातु के कर्ता में ल्युट्
5. आस्तिक दर्शन	(ड़) वेद का प्रामाण्य न मानने वाले
6. नास्तिक दर्शन	(च) वेद का प्रामाण्य मानने वाले

टिप्पणी

1.11 ईश्वर

विविध दर्शनों ने ईश्वर को माना है। यदि माना है तो उसका स्वरूप क्या है, कार्य क्या है, यह विषय अत्यन्त संक्षेप में यहाँ दिया गया है।

चार्वाक के मत में ईश्वर तो नहीं ही हैं। एवं बौद्ध भी सर्वज्ञ, बुद्ध के अतिरिक्त ईश्वर को नहीं मानते हैं। जैन मत में सर्वज्ञ अर्हत मुनि ही ईश्वर हैं, अन्य नहीं। सांख्य भी जीव के अतिरिक्त ईश्वर को नहीं मानते हैं। मीमांसकों के मत में कर्म ही फल देता है, उसके अतिरिक्त फल देने वाला ईश्वर कोई नहीं है। कुछ मीमांसक ईश्वर को स्वीकार करते हैं। शब्दोपासक वैयाकरण कहते हैं –

परा वाङ् मूलचक्रस्था पश्यन्ती नाभिसंस्थिता।
ह्यदिस्था मध्यमा ज्ञेया वैखरी कण्ठदेशगा॥

इस प्रकार शब्द चतुष्ट्य में मूलभूत पराख्य शब्द (परा वाक), वह ही ईश्वर है, ऐसा कहते हैं। रामानुज के मत में जीवों का नियन्ता, जीवान्तर्यामी जीवों से भिन्न ईश्वर है। जीव वर्ग और जड़वर्ग उसका शरीर है। वह ही जीवों द्वारा किए गए यथाकर्म का यथाश्रुत फल देता है। और वह ज्ञानस्वरूप है। चार प्रकार के दार्शनिक माहेश्वर, नैयायिक, वैशेषिक और माध्व, ऐसा मानते हैं। ईश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं है। किन्तु केवल निमित्त कारण ही है। वह ही कर्म-फलदाता है। माहेश्वरों में लकुलीश, पाशुपत और प्रत्यभिज्ञावादी मानते हैं कि कर्मफल देने हेतु ईश्वर कर्म की अपेक्षा नहीं करता। ईश्वर का फलदातृत्व कर्म की अनपेक्षा को कहता है। तो वहाँ युक्ति है – यदि ईश्वर कर्म की ही अपेक्षा करके फल देगा तो उसके स्वातन्त्र्यभंग का प्रसंग होगा। कर्म का तो फल स्वातन्त्र्यपूर्वक निमित्त कारण होता है।

माहेश्वरों से इतर वैशेषिक और माध्व कर्मसापेक्ष ईश्वर संसार का निर्माण करता है, ऐसा कहते हैं। पातञ्जल दर्शन के मत में ईश्वर जीव की अपेक्षा भिन्न है। किन्तु वह निर्विशेष, निर्लेप और निर्गुण है। और वह न तो जगत का उपादान कारण है और न निमित्तकारण।

और अद्वैतवादी शंकर के मत में परमात्मा निर्विशेष, निर्लेप, निर्गुण, एक एवं पारमार्थिक है। वह न जगत का उपादान कारण है, न निमित्त कारण। जगत की पारमार्थिक सत्ता ही नहीं है तो उसका कारण कहाँ से होगा। जगत् का कारण तो मायोपाधिक परमात्मा है। इसे ही ईश्वर मानते हैं। यह मायाविशिष्ट और स्वप्रधानता पूर्वक जगत का निमित्तकारण होता है। माया की प्रधानता से जगत का परिणामी उपादान कारण होता है। यह ईश्वर माया के आश्रय, मायाविशिष्ट एकदेशभूत केवल जगत का विवर्त उपादान कारण होता है। जीव द्वारा किये कर्मों और उन कर्मों के अनुसार फल यह ईश्वर ही देता है।

1.12 मोक्ष

सभी लोगों का चरम काम्य मोक्ष है। उस विषय में दर्शनों के मत यहाँ अति संक्षेप से दिये गए हैं। मृत्यु-देह का नाश ही मोक्ष है, ऐसा चार्वाक का मत है। आत्म का छेदन ही मोक्ष है, ऐसा शून्यवादी और माध्यमिक बौद्ध मानते हैं। निर्मल ज्ञान का उदय ही मोक्ष है, ऐसा अन्य (इतर) बौद्ध मानते हैं। कर्म करने वालों के देह स्वरूप के आवरण के अभाव में जीव का सतत् (निरन्तर) ऊर्ध्वगमन ही मोक्ष है, ऐसा जैन मानते हैं। सर्वज्ञ आदि के परमात्मगुणों की प्राप्ति और भगवत्स्वरूप का अनुभव मोक्ष है, ऐसा रामानुजीय मानते हैं। जगत् कर्त्तत्व-लक्ष्मी पतित्व-श्रीवत्सप्राप्तिरहित, दु:ख से अमिश्रित पूर्ण सुख को मोक्ष कहते हैं, ऐसा माध्व मानते हैं। परम ऐश्वर्य की प्राप्ति ही मोक्ष है, ऐसा नकुलीशपाशुपत मानते हैं। शिवत्व की प्राप्ति ही मोक्ष है, ऐसा शैव मानते हैं। पूर्णात्मता का लाभ ही मोक्ष है, ऐसा प्रत्यभिज्ञावादी मानते है। देहस्थैर्य में जीवनमुक्ति ही मोक्ष है, ऐसा रसेश्वरवादी मानते हैं। अशेष-विशेष गुणोच्छेद को मोक्ष कहते है, ऐसा वैशेषिक मानते हैं। आत्यन्तिक दु:खनिवृत्ति मोक्ष है, ऐसा नैयायिक मानते हैं। दु:ख से निवृत्ति और सुख की प्राप्ति मोक्ष है, ऐसा नैयायिक के एक सम्प्रदाय मानते हैं। स्वर्ग-आदि की प्राप्ति मोक्ष है, ऐसा मीमांसक मानते हैं। मूलचक्रस्थ, परानामिक और ब्रह्मरूप का वाचक दर्शन ही मोक्ष है, ऐसा पाणिनी का मानना है। प्रकृत में पुरूष का स्वरूप द्वारा अवस्थान ही मोक्ष है, ऐसा सांख्य दार्शनिकों का मानना है। कृतकर्त्वय पूर्वक पुरूषार्थशून्य सत्व-रज-तम का मूलप्रकृति में आत्यन्तिक लय प्रकृति कर मोक्ष है, चितिशक्ति का निरूपाधिक स्वरूप द्वारा अवस्थान मोक्ष है, ऐसा पातञजल मानते हैं। मूलज्ञान की निवृत्ति होने पर अपने स्वरूप का साक्षात्कार मोक्ष है, ऐसा अद्वैतवेदान्ति मानते हैं।

पाठगत प्रश्न 1.8

59. ये ईश्वर के स्वीकारक (विस्तारक/स्वीकार करने वाले) है।

    (क) चार्वाक (ख) वेदान्ती (ग) सांख्य (घ) मीमांसक

60. ये ईश्वर के स्वीकारक नहीं है।

    (क) विशिष्टाद्वैती (ख) वेदान्ती (ग) सांख्य (घ) माध्व

61. ये दर्शन प्रवर्तक से अन्य किसी ईश्वर को नहीं स्वीकार करते हैं।

    (क) आर्हत (ख) विशिष्टाद्वैती (ग) वैशेषिक (घ) माध्व

62. मृत्यु ही मोक्ष है, ऐसा कौन मानते हैं?

    (क) चार्वाक (ख) आर्हत (ग) सांख्य (घ) मीमांसक

टिप्पणी

63. स्वर्गप्राप्ति ही मोक्ष है, ऐसा कौन मानते हैं?

(क) चार्वाक (ख) आर्हत (ग) सांख्य (घ) मीमांसक

64. अशेषविशेषगुणोच्छेद ही मोक्ष है, ऐसा कौन मानते हैं?

(क) वैशेषिक (ख) आर्हत (ग) सांख्य (घ) मीमांसक

65. जीव का सतत् ऊर्ध्वगमन मोक्ष है, ऐसा कौन मानते हैं?

(क) वैशेषिक (ख) आर्हत (ग) सांख्य (घ) मीमांसक

पाठसार

भारतीय दर्शन का सामान्य परिचय इस पाठ में संक्षेप रूप में दिया गया है। दर्शन शब्द दृशिर् प्रेक्षणे इस धातु में ल्युट् प्रत्यय के योग से निष्पन्न है। यहाँ यद्यपि ज्ञान-सामान्य यह अर्थ ग्रहण होता है तथापि प्रमा, प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय, यह चार अर्थ भी दर्शन शब्द के विवक्षा भेद और प्रसंगभेद से होते है।

सुख चाहता हुआ जीव क्रमशः उन्नति करके अन्तिम गति द्वारा दर्शन का ही अन्वेषण करता है। लोग सुख के प्रकार एवं अलौकिक उपायों को जानने के लिए दर्शन का अवलम्बन करते हैं। दर्शन के बिना मानव पशु के समान है, ऐसा इस दर्शन का माहाम्य है। दर्शन का विषय अत्यन्त व्यापक होता है। जीव अपने अभीष्ट लाभ के लिए ही सभी शास्त्र और भवन आदि का सृजन करते हैं। अतः दर्शन स्व अभीष्ट लाभ का अलौकिक उपाय बताता है। उसकी ही सहायता से अन्य सभी विज्ञान आदि शास्त्र जाने जाते है। दर्शन ही जीवन के आचार-विचार का निर्धारक है। दर्शन की सर्वत्र व्याप्ति होती है।

धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष, चार पुरूषार्थ हैं। जीव इससे भिन्न जीवन में कभी भी कुछ भी नहीं चाहता है। पुरूष द्वारा अर्थमान होने से ये ही पुरूषार्थ हैं। काम सोपाधिक, जन्य, अनित्य सुख है और मोक्ष निरूपाधिक, अजन्य, नित्य सुख है। अतः मोक्ष ही परम पुरूषार्थ है। काम का कारण धर्म है। धर्म का कारण वेदविहित कर्म है। वेदविहित कर्म के अनुष्ठान के लिए द्रव्य आदि सामग्री ही अर्थ है। इस जन्म में सुख की कामना करने वाले लोकायत हैं। जन्मजन्मान्तर तक सुखमय चक्र की कामना करने वाले मीमांसक हैं। जन्म को रोकने की इच्छा करते हैं, मुमुक्षु हैं, ऐसे सुखकर्मियों के तीन भेद स्पष्ट हैं।

दर्शन इन्द्रियातीत ज्ञान है। और वह प्रत्यक्ष अथवा अनुमान प्रमाण के द्वारा नहीं जाना जा सकता। अतः शब्द प्रमाण से ही उसका अवबोध होता है। अत एव दर्शन का मूल वेद ही है।

भारतीय दर्शन केवल पुस्तक मात्र में प्रतिपादित कुछ सिद्धान्त नहीं हैं। ये सभी भारतीय के जीवन को प्रभावित करते हैं। दर्शन के सिद्धान्तों के जीवन में उपयोग के लिए स्मृति-शास्त्र आए। जिनका जीवन दर्शन के अनुसार रहा, उनका जीवन-वर्णन पुराणों आदि में किया गया है।

वय, गुण, प्रवणता और वैराग्य, इनके तारतम्य से दर्शन के उपासकों के भेद हैं। अतः सभी के अनुकूल दर्शनों में अनेक उपाय उक्त हैं। अतः दर्शनों में भेद परिलक्षित होते हैं। और भी, दर्शन जिज्ञासुओं में ग्रहण, धारण आदि के सामर्थ्य भेद से विद्वानों द्वारा विभिन्न उपाय अवलम्बित होने से उनमें विरोध परिलक्षित होते हैं तथापि सूक्ष्म दृष्टि से देखते हैं तो विरोध वस्तुतः नहीं होता। ''एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'' (सत् एक है, विद्वान उसे अनेक प्रकार से कहते हैं।)

यद्यपि दर्शनों में भेद के कारण हैं तथापि साम्यस्थल बहुत से हैं। और वे अधिकांश स्थल धर्म-द्वन्द्व के नाश के लिए जानने योग्य हैं। वे दर्शन अनेक भिन्न-भिन्न शाखाओं में हैं। बहुत से आचार्यों द्वारा उनके विभाग के विविध मार्ग प्रदर्शित किए गए हैं। दर्शनों में भेद के मुख्य कारण प्रमाण हैं। अतः कौन सा दर्शन किस प्रमाण को वर्णित करता है, यह विषय संक्षिप्त रूप से कहा गया है। उसी प्रकार ईश्वर और मोक्ष के विषय में दार्शनिकों में मतभेद है। उनके मतों का उल्लेख यहाँ किया गया है। जीव-सृष्टि-मोक्ष के साधन आदि विषयों में यद्यपि विविधता है तथापि विस्तार के भय को त्याग कर उनका वर्णन किया गया है।

पाठान्त प्रश्न

1. दर्शन शब्द की व्युत्पत्ति को दिखाएँ?
2. दर्शन शब्द का अर्थ प्रमा कैसे, वह दिखाएँ?
3. दर्शन शब्द का अर्थ प्रमाता कैसे, वह दिखाएँ?
4. शास्त्र क्या है? परिचय दें?
5. दर्शन की आवश्यकता को उपपादित करें?
6. दर्शन की व्यापकता को आविष्कृत करें?
7. पुरूषार्थों को प्रतिपादित करें?
8. सुख चाहने वालों में विभाग का वर्णन करें?
9. दर्शन के मूल का अन्वेषण करें?
10. दर्शन की व्यवहार योग्यता को सम्पादित करें?

टिप्पणी

11. अधिकार के भेद से दर्शन के भेद हैं, इस विषय को आलोकित करें।
12. धर्म से दर्शन कैसे उत्पन्न होता है, यह बताएँ?
13. दर्शनों में मतभेद के कारणों की आलोचना करें।
14. दर्शनों में साम्यता उपस्थापित करें।
15. अग्निपुराण में गृहीत दर्शनों के भेद को उपास्थापित करें।
16. सर्वदर्शन में गृहीत दर्शनों के भेद को उपस्थापित करें।
17. दर्शन के भेद द्वारा प्रमाण-भेद बताएँ।
18. दर्शन-भेद द्वारा ईश्वर विषयक मत उल्लिखित करें।
19. दर्शन-भेद द्वारा मोक्ष विषयक मत उल्लिखित करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-1.1

1. दृशिर् प्रेक्षणे धातु में ल्यूट्-प्रत्यय के योग से दर्शन शब्द निष्पन्न होता है।
2. ज्ञान-सामान्य
3. प्रमाण, प्रमाता, प्रमेय और प्रमा ये चार हैं।
4. (क)
5. (ख)
6. (घ)
7. (ग)
8. जो पुंस अर्थात् मर्त्य की नित्य इष्ट में प्रवृत्ति तथा अनित्य में निवृत्ति का उपदेश दे, वह शास्त्र है। इसकी कारिका है-

   प्रवृत्तिर्वा निवृतिर्वा नित्येन कृतकेन वा।

   पुंसां येनोपदिश्यते तच्छास्त्रमभिधीयते।।

उत्तर-1.2

9. धर्म

टिप्पणी

10. बुद्धि और युक्ति द्वारा

11. जामिता-परिहार के लिए मनोरञ्जन करने के लिए नाटक, काव्य, उपन्यास, उद्यान, क्रीड़ा आदि होते हैं।

12. दर्शन की महिमा सभी को ज्ञात है।

13. दर्शन सुखलाभ के अदृष्ट, अलौकिक उपायों को प्रतिपादित करता है।

14. दर्शन का

उत्तर-1.3

15. सुख

16. दु:ख

17. सुख दो प्रकार का है। नित्य और अनित्य। नित्य सुख मोक्ष है। अनित्य सुख काम है।

18. नित्य सुख मोक्ष है।

19. अनित्य सुख काम है।

20. धर्म

21. अधर्म

22. वेदविहित कर्म

23. वेदनिषिद्ध कर्म

24. 'इदं मदिष्टसाधनम्' ऐसा ज्ञान प्रवृत्ति का कारण होता है।

25. अर्थ्यते अति अर्थ:। पुरूष का अर्थ पुरूषार्थ है। अथवा पुरूष द्वारा जो चाहा जाता है, वह पुरूषार्थ है। अर्थात् पुरूष, नर अथवा नारी जो इच्छा करते हैं, वह ही पुरूषार्थ है।

26. पुरूषार्थ, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार हैं।

27. धर्म और अर्थ गौण हैं। काम और मोक्ष मुख्य हैं।

28. मोक्ष परम पुरूषार्थ है, नित्य होने के कारण।

29. जो कृतक है वह अनित्य है, यह दृष्ट और अनुमान द्वारा सिद्ध नियम है।

30. चार्वाक, पूर्वमीमांसक और मुमुक्षु।

31. (घ)

32. (घ)

33. (क)

34. (ख)

उत्तर-1.4

35. जीव, सृष्टि, ईश्वर, ब्रह्म, बन्ध, मोक्ष, मोक्ष साधन ये विषय हैं।

36. व्यवहार योग्य

37. दर्शनशास्त्र सिद्धान्तों को निश्चित करता है। स्मृति विधि और निषेध मुख द्वारा उन सिद्धान्तों का जीवन में व्यवहार हेतु प्रतिपादन करती है। और पुराण आदि में उनका जीवन-चरित्र वर्णित होता है जिनके द्वारा स्वजीवन दर्शन के सिद्धान्त के अनुकूल और स्मृतिशास्त्र सम्मत रूप में चलाया जाता है।

38. प्रभाव है।

39. (क)

40. (ग)

41. (ख)

उत्तर-1.5

42. शुद्धोदन

43. सिद्धार्थ

44. (क)

उत्तर-1.6

45. एकादश (ग्यारह)

46. 16

47. (ग)

48. (घ)

49. (घ)

50. (घ)

51. (घ)

52. (घ)

उत्तर-1.7

53. (ग)

54. (घ)

55. (क)

56. (घ)

57. (ख)

58. 1-(ग), 2-(घ), 3-(ख), 4-(क), 5-(च), 6-(ङ)

उत्तर-1.8

50. (ख)

60. (ग)

61. (क)

62. (क)

63. (घ)

64. (क)

65. (ख)

॥ प्रथम पाठ समाप्त॥